अध्याय – 3

आवृतबीजी पादपों की बाह्य आकारिकी एवं लक्षण

(Morphology and Characteristics of Angiosperms)

आवृतबीजी पादपों का सामान्य परिचय

आवृतबीजी (एन्जिओस्पर्म) शब्द, दो शब्दों क्रमशः आवृत एवं बीजी से मिलकर बना है। 'आवृत' से अभिप्राय आवरणयुक्त एवं 'बीजी' से अभिप्राय बीज है। ऐसे पौधे जिनमें बीज फलभित्ति से ढका रहता है, आवृतबीजी पादप कहलाते हैं। एक प्रारूपिक आवृतबीजी का शरीर कायिक भाग जड़, तना एवं पत्ती तथा लैंगिक भाग फूल, फल एवं बीज से मिलकर बना होता है। प्रारूपिक पौधों में मटर का पौधा इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि इसकी फली एक परिपक्व अण्डाशय है व बीज इनमें छिपी हुई अवस्था में रहते हैं। आवृतबीजी पौधों की लगभग दो लाख प्रजातियां पाई जाती हैं। यह अत्यंत विकसित वर्ग हैं। आवृतबीजी पौधों में मुख्य रूप से जड़, तना, पत्ती, शाखा, फूल, फल एवं बीज विभिन्न क्रियाओं को प्रतिपादित करते हैं। जड़, तना, पत्ती, सामान्यतया कायिक क्रियाओं को करते हैं, जैसे जल एवं लवण अवशोषण तथा संवहन, पत्तियाँ प्रकाश संश्लेषण एवं श्वसन आदि, जबकि पुष्प लैंगिक भाग हैं तथा फल एवं बीज इसके उत्पाद होते हैं।

आवृतबीजी पौधों के विभिन्न भाग

1. जड़ (Root) – जड़ आवृतबीर्जी पौधों का वह भाग हैं जो प्रकाश से दूर, गुरुत्व तथा नमी की ओर वृद्धि करता हैं। जड़ें भूमि से जल व लवणों का अवशोषण कर संवहन करती है तथा पौधों को आधार प्रदान करती है।

2. तना (Stem) – तना पौधें का वह भाग है जो गुरुत्वाकर्षण के विपरीत, प्रकाश की ओर भूमि के ऊपर वृद्धि करता हैं, तथा पत्तियों एवं शाखाओं को धारण करता हैं। पौधे के सम्पूर्ण वायवीय भाग जिसमें तना, शाखा पत्तियाँ आदि आती हैं, प्ररोह तंत्र कहलाता हैं। तने का मुख्य कार्य जल व लवणों को पत्तियों तक संवहन तथा पत्तियों में तैयार खाद्य पदार्थों को पौधे के अन्य भागों तक पहुंचाना एवं आधार प्रदान करना है।

3. पर्ण (Leaf) – यह स्तम्भ की हरी पार्श्व अतिवृद्धि है। जो पर्वसंधि पर उत्पन्न होती हैं। पत्तियों के हरे भागों में प्रकाश–संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण होता है।

4. पुष्प (Flower) – पुष्प पौधे का लैंगिक भाग होता है। इसमें पौधे के नर व स्त्री जनन अंग पाये जाते हैं। अतः इसे जननांग भी कहा जाता है। पुष्प को जनन के लिए रूपान्तरित विशेष प्ररोह की संज्ञा भी दी जाती है (चित्र 3.1)।

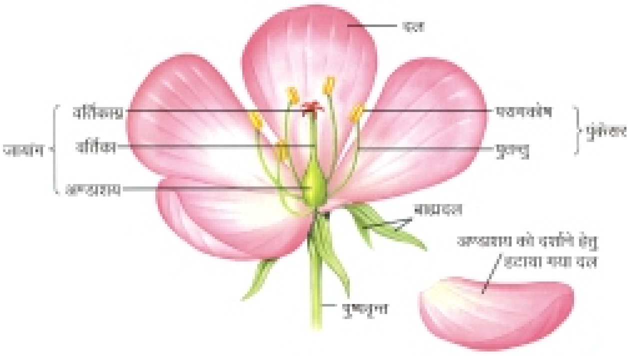

चित्र 3.1 : प्रारूपिक पुष्प के मुख्य भाग

आवृतबीजी पौधों की आयु

आयु अवधि के आधार पर आवृतबीजी पौधों को तीन वर्गो में बाँटा गया हैः–

(1) एकवर्षीय (Annuals) – सभी फसली पौधें जैसे :– गेहूँ, जौ, चना, मक्का, चावल एवं विभिन्न पुष्पी पौधे जैसेः–बालसम,जिनिआ, राननकुलस आदि एक वर्षीय पौधों के उदाहरण है, क्योंकि इनकी आयु एक वर्ष या एक ऋतु होती है, अतः यह पौधें एक वर्षी कहलाते है।

(2) द्विवर्षीय (Biennials) – कुछ पौधे जैसेः– गाजर, मूली, चुकंदर और शलजम पादपों का जीवन चक्र दो वर्ष या ऋतु में पूरा होता है। प्रथम वर्ष इनमें कायिक वृद्धि होती है एवं द्वितीय वर्ष में फल व बीज बनते हैं। इसलिये इन्हें द्विवर्षी पौधे कहते हैं।

(3) बहुवर्षीय (Perennials) – वे पौधें जो एक बार स्थापित होने के बाद वर्षों तक जीवित रहते हैं तथा अनुकूल ऋतु में पुष्पन एवं फलन करते हैं। जैसे :– नीम, बरगद, पीपल, आम, जामुन, बेर आदि बहुवर्षीय पौधे हैं।

आवृतबीजी पौधों की आवास प्रकृति

वे पौधे जो स्थल पर उगते है, स्थलीय कहलाते हैं। जबकि जो जल में उगते हैं, जलीय कहलाते हैं। इस प्रकार विविध परिस्थितियों में पैदा होने वाले पादपों को निम्न पाँच वर्गो में बाटा जाता है– 1.मरूद्‌भिद् (Xerophytes) 2.जलोद्‌भिद् (Hydrophytes) 3. समोद्‌भिद् (Mesophytes) 4. लवणमृदोद्‌भिद् (Halophytes) 5. अधिपादप (Epiphytes)

1. मरूद्‌भिद् (Xerophytes) – मरूद्‌भिद् आवृतबीजी पौधें शुष्क वातावरण में मिलते है । शुष्क वातावरण में कम वर्षा होती है, वातावरण एवं मृदा में नमी की कमी रहती है, एवं प्रकाश की अधिकता के कारण तापमान भी अधिक रहता है तथा तेज गर्म हवायें चलती है। इन सभी कारको से पौधों में जल वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है, अतः मरूद्‌भिद् पौधों में जल की हानि को कम करने हेतु अनुकूलन पाये जाते हैं। प्रायः ये अनुकूलन वाष्पोत्सर्जन की दर को कम करने, अधिक तापक्रम सहन करने तथा जल संचय के लिये होते हैं, जिसके लिये पौधे के स्तम्भ, शाखा एवं पर्ण रूपान्तरित हो जाते है। उदाहरण :– ग्वारपाठा, रामबांस, नागफनी, थोर (केक्टस), ओपुन्सियां (चित्र 3.2 अ)।

केक्टस नागफनी ग्वारपाठा

चित्र 3.2 अः बमरूदभिद प्रकृत्ति के कुछ आवृतबीजी पादप

2. जलोद्‌भिद् (Hydrophytes) – जलीय या अत्यधिक आर्द्र वातावरण में मिलने वाले पौधों को जलोद्‌भिद् कहते हैं। जलीय आवृतबीजी पौधे में जल तथा लवण का अवशोषण पादप शरीर की सामान्य सतह द्वारा होता है। अतः जल संवहन की आवश्यकता नहीं होती है एवं मूल व स्तम्भ संवहनी तंत्र अल्पविकसित होता है। स्तम्भ, शाखाओं तथा पत्तियों में वायु गुहाए पायी जाती है। पौधों की पत्तियां कोमल, स्पंजी, कटी–फटी, रिबन के समान लम्बी होती है, जैसे–लिम्नोफिला। उभयचरी आवृतबीजी के वायव भाग में सरल व बड़े पर्णफलक वाले पर्ण मिलते है, जैसे–कमल (चित्र 3.2 ब) जबकि जलमग्न भाग में कटे–फटे रिबन सदृश्य पर्ण पाये जाते है, ऐसे लक्षण को विषम पर्णता कहते हैं, उदाहरण :– सैजिटेरिया।

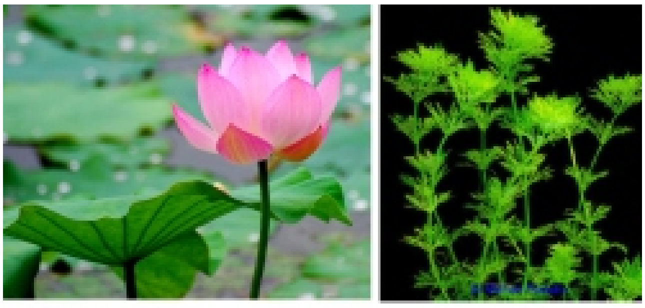

कमल लिम्नोफिला

चित्र 3.2 ब : जलोद्‌भिद् प्रकृत्ति के कुछ आवृतबीजी पादप

3. समोद्‌भिद् (Mesophytes) – सामान्य नमी एवं ताप वाले स्थानों पर पाये जाने वाले पौधे समोद्‌भिद् कहलाते हैं। ये मरूद्‌भिद् एवं जलोद्‌भिद् की बीच की श्रेणी के होते है। इस वर्ग के द्विबीजपत्री पौधों में मूसलाजड़ तथा एकबीजपत्री पौधों में झकड़ा जड़ पायी जाती है। स्तम्भ उर्ध्व एवं शाखित होता है। जबकि पत्तियां पतलीभित्ती वाली होती है तथा इनमें अधिचर्म पर विशेष कर निचली सतह पर रन्ध्र पाये जाते हैं। उदाहरण :–सभी फसली पौधे जैसे :– गेहूँ, कपास, आम, अमरूद आदि (चित्र 3.2 स)।

गेहूँ कपास

चित्र 3.2 स : समोद्‌भिद् प्रकृत्ति के कुछ आवृतबीजी पादप

4. लवणमृदोद्‌भिद् (Halophytes) – लवणीय मृदा एवं जल में पाये जाने वाले पौधों को लवणमृदोद्‌भिद् पौधे कहते है।

इन पौधों के कोशिका द्रव्य की सान्द्रता अधिक होती है, जिससे परासरण दाब द्वारा मृदा से जल अवशोषण किया जा सके। इनमें लवण घुलित जल की पौधे में अधिक सान्द्रता से बचाने हेतु पौधे के पर्णो द्वारा इसका निस्तारण होता रहता है। इनमें पत्तियां एवं स्तम्भ गूद्देदार होते है। उदाहरण :– सुइडा, पोर्चुलाका, चिनोपोडियम आदि। समुद्र तट पर पाये जाने वाले वनस्पति मैंग्रोव कहलाते है तथा इनमें श्वसन जड़ न्यूमेटोफोर पायी जाती है (चित्र 3.3 अ)।

(अ) न्यूमेटोफोर (ब) आर्द्रताग्राही जड़

चित्र 3.3 : न्यूमेटोफोर (राइजोफोरा) एवं अधिपादप (आर्किड)

5. अधिपादप (Epiphytes) – उष्ण प्रदेशों के आर्द्र वनों में इस प्रकार के आवृतबीजी पादप मिलते है जो बड़े वृक्षो की शाखाओं पर उग आते हैं, परंतु अपना भोजन स्वंय बनाते हैं तथा इनमें प्रकाश संश्लेषी (जैसे :– *टीनीयोफिल्लम*) एवं आर्द्रताग्राही जड़ें (जैसे :–*वैन्डा*) पायी जाती हैं (चित्र 3.3 ब)।

आवृतबीजी पौधों में पोषण
(Nutrition in Angiosporms)

अधिकांश आवृतबीजी पौधें में हरित लवक पाये जाने के कारण अपना भोजन स्वयं बनाते है, अतः स्वपोषी कहलाते हैं। परंतु कुछ पौधे जिनमें पर्णहरित का अभाव पाया जाता है, या किसी अन्य कारण से भोजन नहीं बना पाते है या अवशोषण नहीं कर पाते है, ऐसी अवस्था में परजीवी के रूप में जीवन निर्वाह करते है। निर्भरता के आधार पर इन्हे आंशिक परजीवी एवं पूर्ण परजीवी कहते हैं (चित्र 3.4)। अन्य पौधों के विभिन्न अंगों पर निर्भरता के आधार पर इन्हें मूल परजीवी या स्तम्भ परजीवी कहा जाता है। जिसके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं:–

1. आंशिक स्तम्भ परजीवी– *डेन्ड्रोफ्थी, विस्कुम*।
2. आंशिक मूल परजीवी – प्रारम्भिक अवस्था में चन्दन।
3. पूर्ण स्तम्भ परजीवी – अमरबेल।
4. पूर्ण मूल परजीवी – *ओरोबंकी, स्ट्राइगा, रेफ्लीसिया* ।
5. सहजीवी – कुछ आवृतबीजी अन्य जीवों के साथ सहजीवी के रूप में भी जीवनयापन करते हैं, उदाहरण :– मटरकुल के पौधे राईजोबियम के साथ ,मोनोट्रापा कवक के साथ।

स्तम्भ परजीवी

विस्कुम अमरबेल

जड़ परजीवी

ओराबंकी स्ट्राइगा

चित्र 3.4 : विभिन्न परजीवी आवृत्तबीजी

जड़, तना, एवं पत्ती की आकारिकी एवं रूपान्तरण
(Morphology and Modification of Root, Stem & Leaves)

जड़ की आकारिकी एवं रूपान्तरण
(Root Morphology and Modification)

जड़ पौधे का वह भाग है जो धनगुरूत्वानुवर्ती और धनजलानुवर्ती होती है। अतः भूमि में गुरुत्व और नमी की ओर वृद्धि करती है, तथा प्रकाश से दूर रहती है। यह भाग भ्रूण मुलांकुर से बीज चोल को तोड़कर पतली श्वेत कोमल संरचना के रूप में बाहर निकलती है तथा वृद्धि कर प्राथमिक जड़ को बनाती है। जिससे पार्श्व जड़ें निकलती है, जिन पर मूलरोम पतली एक कोशिकीय संरचनाये होती है। जो मृदा कणों के बीच फैले रहते

हैं। प्रथममूल, पार्श्वमूल एवं मूलरोम मिलकर मूल तंत्र की संरचना करते है। मूल के अग्र भाग पर एक टोपी सदृश्य संरचना पायी जाती है, जिसे मूलगोप कहते है। मूलगोप के नीचे मूल का वर्धन प्रदेश पाया जाता है, यह मूल से सिरे से कुछ सेन्टीमीटर भाग तक फैला रहता है। मूल का वर्धन प्रदेश तीन भागों में बंटा होता है (चित्र 3.5)।

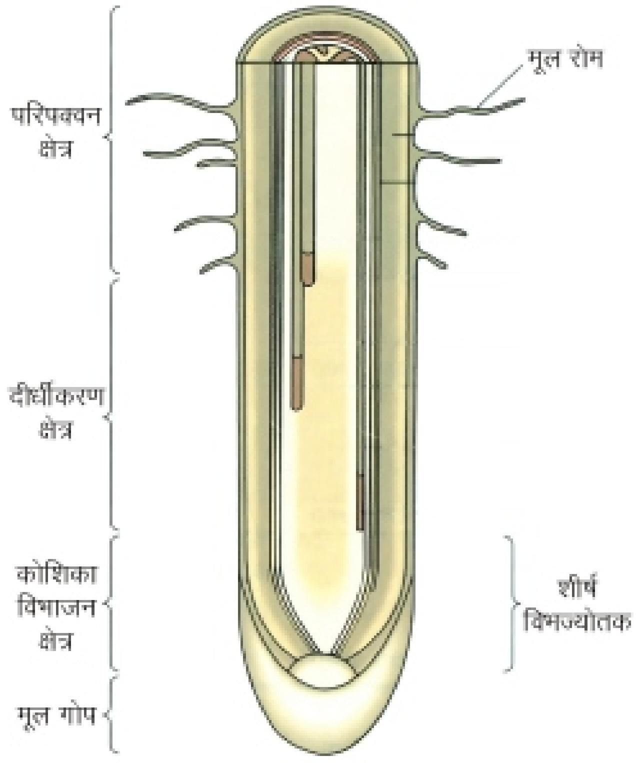

चित्र 3.5 : जड़ के वर्धन क्षेत्र

1. विभज्योत्तिकी क्षेत्र– यह क्षेत्र मूल के सिरे पर एक मिलीमीटर या कुछ मिलिमीटर तक फैली होती है। इस क्षेत्र की कोशिकाये छोटी और पतली होती है। जिनमें सघन जीवद्रव्य पाया जाता है। इन कोशिकाओं का कार्य बार–बार विभाजित होकर कोशिकाओं की संख्या बढ़ाना होता है। इसके अतिरिक्त मूलगोप की नष्ट हुई कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति करना होता है। इस क्षेत्र का अधिकांश भाग मूलगोप से ढ़का होता है।

2. दीर्घीकरण क्षेत्र – दीर्घीकरण क्षेत्र विभज्योत्तिकी क्षेत्र के उपर होता है तथा यह कुछ मिलीमीटर तक फैला रहता है। विभज्योत्तिकी क्षेत्र में बनी नई कोशिकायें इस क्षेत्र में वृद्धि करती है।

3. परिपक्वन क्षेत्र – यह क्षेत्र दीर्घीकरण क्षेत्र के ऊपर होता है तथा यह कुछ मिलीमीटर से कुछ सेन्टीमीटर तक फैला रहता है। इस क्षेत्र में उपस्थित मूलरोमो को देखकर इसे आसानी से पहचाना जा सकता है। इस क्षेत्र में कोशिकाऐं परिपक्व होकर विभिन्न ऊतकों में विभेदित होने लगती है। मूलरोम मूल की दो सेन्टीमीटर परिधि में पाये जाने वाले मृदा कणों में फैले रहते हैं।

जड़ों के प्रकार

जड़ें मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैः (चित्र 3.6)–

1. मूसला जड़ तंत्र (Tap root system)
2. अपस्थानिक जड़ तत्र (Adventitious root system)

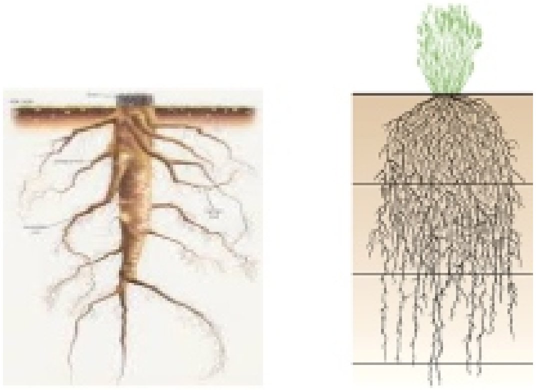

मूसला मूल झकड़ा मूल

चित्र 3.6 : जड़ों के प्रकार

1. मूसला जड़ तंत्र – इस प्रकार की जड़ो में भ्रूण के मुलांकुर से प्राथमिक जड़ बनती है। यह लम्बाई एवं मोटाई में वृद्वि कर मुख्य जड़ बन जाती है, जिससे पार्श्व जड़ें अग्राभिसारी क्रम में बनती है जिन्हें द्वितीयक या तृतीयक जड़ कहते है। इस प्रकार की जड़ें सरसों, मूली, गाजर आदि में पायी जाती है।

2. अपस्थानिक जड़ तंत्र – इस प्रकार के जड़ तंत्र में जड़ें मूंलाकुर के अतिरिक्त अन्य किसी भाग जैसे :–स्तम्भ, शाखा, तना व पत्ती से परिवर्धित होती है तथा भूमिगत होकर सामान्य जड़ों के सभी कार्य करती है। मूल के रूप में सामान्य कार्यों को करने वाली अपस्थानिक जड़ दो प्रकार की होती है।

(अ) रेशेदार जड़ तंत्र – एक बीजपत्री पौधों में इस प्रकार जड़ तंत्र मिलता है, इसमें मूंलाकुर से प्रथम मूल बनने के स्थान पर स्तम्भ के निचली सतह से अनेक जड़ें निकल आती है, जिसे रेशेदार जड़ तंत्र कहते हैं, उदाहरणः–मक्का, गन्ना, बांस आदि। इनमें पौधों के सीधे खड़े स्तम्भ के भूमि के निकट वाली पर्वसंधि से रेशेदार जड़ें निकल आती है और भूमि में घुसकर सामान्य कार्यो को करती हैं।

(ब) कलम – आधार के अतिरिक्त कुछ पौधो जैसे :– गुलाब, गुड़हल व गन्ना के स्तम्भ या शाखाओं को मृदा में लगा देने पर पर्वसंधियों से अपस्थानिक जड़ें निकल आती हैं। इन टुकड़ों को कलम कहते हैं।

जड़ों के रूपान्तरण

मूसला तथा अपस्थानिक, दोनों प्रकार की जड़ें विभिन्न कार्यों जैसे :– खाद्य संग्रह, आधार प्रदान करने, तथा विभिन्न जैव कार्यों को करने के लिये रूपान्तरित हो जाती है। इन्हे पुनः दो भागों में बांटा जाता है–

1. रूपान्तरित मूसला मूल
2. रूपान्तरित अपस्थानिक मूल

1. मूसला मूल के खाद्य संग्रह हेतु रूपान्तरण

मूसला जड़ खाद्य संग्रह के लिये फूलकर, गूदेदार एवं विभिन्न आकार एवं आकृति की हो जाती है (चित्र 3.7)। आकृति के आधार पर इन्हें निम्नांकित चार भागों में बांटा जाता है–

1. तर्कु रूप (Fusiform) – इस प्रकार के रूपान्तरण में मूसला जड़ एवं बीजपत्राधार दोनो ही खाद्य संग्रह करते है। तर्कु रूपी मूसला जड़ बीच में से फूली हुई ओर शीर्ष तथा आधार दोनों ओर क्रमशः पतली होती है। मूली इसका उपयुक्त उदाहरण है।

2. शंकु रूप (Conical form) – मूसला जड़ के इस रूपान्तरण में मूल आधार भाग में चौड़ी तथा सिरे की ओर क्रमश संकरी होती जाती है। जिससे मूल की आकृति शंकु के समान दिखायी देती है, गाजर, इसका उपयुक्त उदाहरण है।

3. कुम्भी रूप (Napiform) – इस प्रकार की मूसला जड़ का आधार फूलकर गोलाकार संरचना में रूपान्तरित हो जाता है तथा मूल का सिरे वाला भाग अत्यधिक पतला रह जाता है, इसके उपयुक्त उदाहरण :– शलजम एवं चुकंदर है। शलजम में गोलाकार भाग बीजपत्राधार होता है एवं मुख्य मूल अत्यधिक पतले भाग को प्रदर्शित करती है। वही चुकन्दर में बीज पत्राधार एवं जड़ का आधार भाग फूलकर गोलाकार हो जाते है एवं मूल शीर्ष संकरा और पतला रहता है।

चित्र 3.7 : खाद्य संग्रह हेतु मूसला मूल के रूपान्तरण
(अ) तर्कु (ब) शंकु एवं (स) कुंभी रूप

4. कंदिल जड़ (Tuberous root) – इस प्रकार के मूसला जड़ के रूपान्तरण में जड़ें किसी प्रकार की निश्चित आकृति या आकार नहीं बनती बल्कि फूलकर गूदेदार हो जाती है। उदाहरण :– *मिराबिलिस*।

मूसला मूल की शाखा का श्वसन के लिए रूपान्तरण

समुद्र के किनारे दलदली भूमि में ऑक्सीजन का अभाव होता है, अतः कुछ पौधों जैसे राईजोफोरा, एविसिनिया, एवं सोनोराशिया आदि में मूसला मूल तंत्र की शाखायें वायवीय श्वसन जड़ में रूपान्तरित हो जाती है तथा मृदा से बाहर निकलकर ऊपर की ओर वृद्धि करती है, जिन्हें न्यूमेटोफोर (चित्र 3.3 अ) कहते हैं। इनके सिरों पर अनेक रंध्र पाये जाते हैं जिन्हें न्यूमेथोड कहते हैं।

खाद्य संग्रह हेतु अपस्थानिक जड़ों के रूपान्तरण – विशिष्ट परिस्थितियों में पौधें के प्ररोह से विशेष प्रकार की जड़ें निकलती है जो विभिन्न आकृति में भोजन संग्रह का कार्य करती है (चित्र 3.8), ये निम्न प्रकार की होती हैं –

1. कंदीय अपस्थानिक मूल (Tuberous adventitious root) – कुछ पौधों में अधिपादप स्तम्भ की पर्णसंधियों से अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं जो खाद्य पदार्थ का संग्रह कर कंदीय संरचनाएं बनाती हैं। इनका एकांगी परिवर्धन होता है तथा यह गुच्छों में नहीं मिलती हैं। उदाहरण :– शकरकंद।

चित्र 3.8 : खाद्य संग्रह हेतु अपस्थानिक जड़ों के रूपान्तरण

2. पुलकित मूल (Fasciculated root) – इन अपस्थानिक जड़ों में स्तम्भ के आधार पर कंदीय मूलों का गुच्छा सा बन जाता है। मूल के इस रूपान्तर को पुलकित मूल कहते हैं। उदाहरण :– डहेलिया, शतावरी, रूईलिया आदि।

3. ग्रंथिल मूल (Nodulous root) – कुछ पौधों में अपस्थानिक जड़ का शीर्ष भाग फूलकर गोलाकार हो जाता है।

इनमें खाद्य संचित रहता है। उदाहरण :– कुरकुमा, अमाड़ा और अरारूट आदि।

4. मालाकार मूल (Moniliform root) – इस प्रकार की अपस्थानिक जड़ो में खाद्य संचय के लिये बने फूले हुए और संकरे भाग एकान्तर क्रम में मिलते है। अतः मूल के इस रूपान्तरण को मालाकार मूल कहते है। उदाहरणः– बासिला, मोमोर्डिका एवं *वाईटिस ट्राइफोलिया* आदि।

5. वलयाकार या छल्लेदार मूल (Annular root) – इस प्रकार की अपस्थानिक जड़ें खाद्य संचय के कारण फूलकर गोल छल्लों की श्रृंखला की तरह आपस में चिपके दिखाई देते है इसका उपयुक्त उदाहरण :– आइपिकाक है।

2. जैव कार्यों के प्रयोजनार्थ रूपान्तरित अपस्थानिक जड़ें

1. चूषकांग या चूषण जड़ (Haustorial or sucking root) – परजीवी पौधों के तने से अपस्थानिक जड़ें निकलती है जो परपोषी के स्तम्भ या मूल में प्रविष्ट कर संवहन ऊतकों तक पहुँच जाते है। चूषकांग के संवहन ऊतक परपोषी के संवहन ऊतक से संयुक्त हो परपोषी द्वारा बनाये गये भोजन का शोषण करते है। ऐसे चूषकांग जड़, अमरबेल, गंठवा, स्ट्राइगा आदि में पायी जाती है (चित्र 3.9)।

चित्र 3.9 : परजीवीः स्ट्राइगा एवं अमरबेल

2. श्वसन मूल (Respiratory roots) – कुछ जलीय पौधों में स्तम्भ या शाखाओं से विशेष प्रकार की अपस्थानिक जड़ें निकलती है जो वायु संग्रह करती है। यह वायु पौधों के श्वसन के काम आती है। ये जड़ें स्पंजी प्रकृति की होती है। उदाहरण :– हेलमिन्थोराइजा (चित्र 3.10)।

चित्र 3.10 : हेलमिन्थोराइजा में श्वसन मूल

3. आर्द्रताग्राही मूल (Hygroscopic root) – अधिपादप पौधे जैसे :– आर्किड जो अन्य वृक्षों की शाखाओं पर उगते है तथा वातावरण से नमी का अवशोषण विशेष प्रकार की जड़ों द्वारा करते है। ये जड़ें अधिपादप के छोटे स्तम्भ के आधार भाग से निकलती है। कुछ जड़ें पौधें को परपोषी पर स्थिर रखती है, जबकि कुछ जड़ें हवा में लटकी रहती है, इन जड़ों की वल्कुट में परिधि पर मृत कोशिकाओं का एक विशेष स्पंजी ऊतक विलामिन पाया जाता है। विलामिन ऊतक द्वारा ये अपस्थानिक जड़ें वातावरण की नमी सोख लेती है और आर्किड जैसे अधिपादपी पौधें की जल आवश्यकता की पूर्ति करती है, आर्द्रताग्राही मूल कहलाती है। उदाहरण :– क्लिविआ, वाण्डा तथा अन्य आर्किड पादप (चित्र 3.11)।

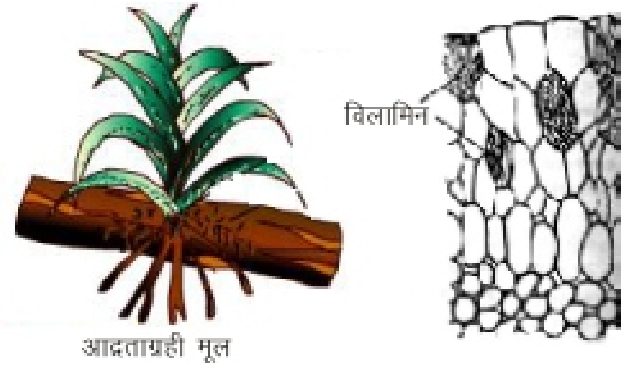

चित्र 3.11 : आर्द्रताग्राहीमूल एवं विलामिन ऊतक

4. प्रकाश संश्लेषी मूल (Assimilatory root) – अधिपादपी पौधों में कुछ जड़े पतली फीते के समान होती है। ये जड़ें हरी होती है और प्रकाश संश्लेषण का कार्य करती है। जो मौलिक रूप से स्तम्भ तंत्र का कार्य है उदाहरणत – गिलोय में पर्वसंधियों से लम्बी हरी जड़ें हवा में लटकती रहती है और प्रकाश संश्लेषण करती है। इसी प्रकार जलीय पौधे सिंघाड़े में

चित्र 3.12 : प्रकाश संश्लेषी मूल

हरी रेशेदार जड़ें पायी जाती है जो प्रकाश संश्लेषण का कार्य करती है। इस प्रकार के अपस्थानिक जड़ों को प्रकाश संश्लेषी मूल कहते हैं (चित्र 3.12)।

5. पर्ण मूल (Leaf root) – कुछ पादपों के पर्ण सामान्य वृद्धि के पश्चात् अधिक भोजन संचित करके, पर्ण परिधि पर विशेष प्रकार की कलिकायें उत्पन्न करते हैं जो कायिक जनन करती है। इन कलिकाओं से जड़ें निकलती है, जो मूल पर्ण से टूटकर अलग होकर नवीन पादप बनाती है। इन जड़ों को पर्णमूल कहते है। उदाहरण :– पत्थरचट्टा (चित्र 3.13)।

चित्र 3.13 : पर्णमूल (पत्थरचट्टा)

पौधों को आधार प्रदान करने वाली अपस्थानिक जड़ें

1. स्तम्भ मूल (Prop root) – कुछ पौधों में तना और शाखायें इतने लम्बे हो जाते है कि सामान्य मूल तंत्र इन पौधों को भूमि में स्थिर रखने में पर्याप्त नहीं होते है। ऐसे पौधों में शाखाओं से अपस्थानिक जड़ें निकलती है जो धीरे–धीरे वृद्धि कर भूमि में प्रविष्ट हो जाती है तथा द्वितीय वृद्धि कर काष्ठीय हो जाती है और पौधों को आधार प्रदान करती है। उदाहरण के लिये बरगद के वृक्ष की शाखाओं से अनेक जड़ें निकली रहती है जो धीरे–धीरे वृद्धि कर भूमि तक पहुँच जाती है और भूमि में प्रवेश कर शाखाओं को अवलम्ब प्रदान करती है। ऐसी जड़ों को स्तम्भ मूल (Prop root) कहते हैं (चित्र 3.14 अ)।

2. अवस्तम्भ मूल (Stilt root) – कुछ एक बीजपत्री पौधों में रेशेदार मूल तंत्र भूमि में अधिक गहराई तक फैला हुआ नहीं होता है। इन पौधों के स्तम्भ को आधार प्रदान करने के लिये स्तम्भ के निचले भाग से भूमि के निकट वाली पर्वसंधियों से अनेक अपस्थानिक जड़ें निकल आती हैं। ये जड़ें तिरछी दिशा में वृद्धि कर भूमि में प्रवेश कर स्तम्भ को उर्ध्व स्थिती में बनाये रखती हैं। इन जड़ो को अवस्तम्भ मूल (Stilt root) कहते हैं। उदाहरणतः– केवड़ा, ज्वार, मक्का, बाजरा, ज्वार, गन्ना आदि (चित्र 3.14 ब–स)।

चित्र 3.14 : आधार प्रदान करने वाली अपस्थानिक जड़ें

3. आरोही मूल (Climbing root) – आरोही पौधों के तने दुर्बल होने के कारण सीधे खड़े नहीं हो पाते है। ऐसे पौधें वृक्ष के तने दीवार तथा ऊँची चट्टानों को आधार बना कर इनके सहारे प्रकाश की ओर बढ़ते हैं। इन पौधों कि पर्वसंधियों और पर्वो पर आरोहण जड़ें निकल आती है,जो आधार पर मजबूती से चिपक जाती है और दुर्बल तने को सम्बल प्रदान करती है। आरोहण मूल के शीर्ष नुकीले या नख सदृश्य होते है, जिनके कारण आधार से चिपकने में आसानी रहती है। कुछ पौधों में आरोहण मूल के शीर्ष भाग से चिपकने वाला द्रव स्त्रावित होता है जो सूखने पर कठोर हो जाता है और मूल को दृढ़ता से स्थिर रखता है। उदाहरण :– पान, काली मिर्च, पोथोस आदि (चित्र 3.14 द)।

जड़ों के निम्नलिखित कार्य हैं –

1. स्थिरीकरण – भूमिगत मूल पौधे को मृदा में दृढ़ता से जमाये रखते है तथा प्ररोहतंत्र का भार वहन करती है।

2. अवशोषण – जड़ें मृदा कणों के बीच फैली रहती है तथा मृदा कणों के घनिष्ठ सम्पर्क में रहती है एवं परसारण दबाव द्वारा इन कणों के मध्य स्थित खनिज, लवण एवं जल आदि के अवशोषण का कार्य करती है। मुख्य रूप से यह कार्य पतली भित्ति वाली एक कोशिकीय संरचना मूलरोम द्वारा किया जाता है। मूलरोम से यह पार्श्व जड़ों एवं तत्पश्चात प्राथमिक जड़ों में होते हुए तने तक पहुँचता है। इस प्रकार जड़ खाद्य पदार्थ का अवशोषण का कार्य करती है।

3. संवहन – मूल के प्रमुख कार्यो में अवशोषित खनिज एवं जल को तने तक पहुँचाना भी होता है इस कार्य को मूल के संवहन तंत्र द्वारा किया जाता है। इसमें मुख्य भूमिका पार्श्व जड़ों, प्राथमिक जड़ों में उपस्थित जायलम ऊतक की होती है। मूल का संवहन तंत्र तने के संवहन तंत्र से जुडकर एक निरंतरता बनाये रखता है जिससे खाद्य पदार्थ का संवहन जड़ों से पौधें के शीर्ष भाग तक होता है।

4. खाद्य संचय – कुछ पौधे में जड़ें विशेष कार्यो को करने के लिये रूपांतरित हो जाती है इनमें से खाद्य संचय एक है। यह संचित खाद्य पौधों के जनन अंगो के विकास, वृद्धि एवं पोषण के काम आता है। उदाहरण :– मूली, गाजर, शलजम आदि।

5. यांत्रिक आधार प्रदान करना – कुछ पौधे इस तरह के होते हैं कि उनके तने दुर्बल होने से वे सीधे खड़े नहीं हो पाते या फिर वायवीय प्ररोह के भार को सहन नहीं कर पाती हैं। ऐसे पौधों में जड़ें अपने मौलिक कार्यो के अतिरिक्त अपस्थानिक संरचनाओं के रूप में इनकी शाखाओं को अवलम्ब प्रदान करती है उदाहरणः– बरगद, मक्का, पान आदि में पायी जाने वाली जड़ें।

6. शरीर कार्यिकी एवं जैव क्रियाएं सम्पादित करना– पौधों में विशेष परिस्थितियों में जड़ें रूपांतरित होकर प्रकाश संश्लेषण, श्वसन एवं चूषकांग जड़ों का कार्य करती है और पौधों के लिये आवश्यक कार्यों को सम्पादित करती है।

7. कायिक जनन – कुछ पौधों जैसे :– पत्थरचट्टा आदि में फलक कोर के किनारे पर उपस्थित कक्षस्थ कलिकाओं से अपस्थानिक जड़ें निकलती है, जिन्हे पर्ण मूल कहते हैं। ये पर्ण मूल मृदा में गिरकर नये पौधे को जन्म देती है इस प्रकार यह कायिक प्रवर्धन का कार्य करती है।

तने की आकारिकी एवं रूपान्तरण (Morphology of Stem and its modifications)

तना पौधे के मुख्य अक्ष का वह भाग है जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विपरीत भूमि के ऊपर प्रकाश की ओर बढ़ता है, अतः तना ऋणगुरुत्वानुवर्ती एवं धन प्रकाशानुवर्ती होता है। बीज जब अंकुरित होता है तो भ्रूण का प्रांकुर वृद्धि कर प्ररोह बनाता है (तना, शाखायें, पुष्प आदि) । तने पर पर्व एवं पर्व संधियां पायी जाती है। पर्व संधियों पर पत्तियां उत्पन्न होती है। पत्तियों के कक्ष में कक्षस्थ कलिका होती है। कायिक कक्षस्थ कलिका से शाखा एवं पुष्प कक्षस्थ कलिका से पुष्प का निर्माण होता है। शाखा पर भी मुख्य तने के समान ही पत्तियां, पर्व, पर्व सन्धियां एवं कक्षस्थ कलिकायें पायी जाती है, जिनसे अग्राभिसारी क्रम में पौधे की शाखाओं ओर तने की वृद्धि एवं विकास होता है। तने एवं शाखाओं का अगला सिरा एक कायिक या पुष्प कलिका के रूप में समाप्त होता है। तने के शीर्ष पर पायी जाने वाली कलिका को अन्तस्थ कलिका कहते हैं। जब अतंस्थ कलिका कायिक कलिका होती है तो शाखा का निर्माण होकर तने की लम्बाई बढ़ती जाती है एवं जब पुष्प कलिका होती है तो पुष्प का निर्माण होकर तने की वृद्धि रूक जाती है (चित्र 3.15)।

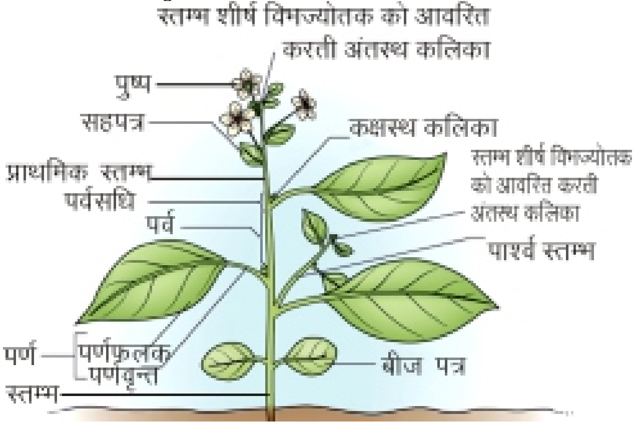

चित्र 3.15 : तने व शाखाओं के भाग

तने के शीर्ष भाग पर तने का वर्धन क्षेत्र पाया जाता है ,एवं मूल के समान तीन क्षेत्रों में विभेदित होता है जो निम्न प्रकार है–

1. विभज्योत्तिकी क्षेत्र – तने के शीर्ष पर सबसे ऊपर वाले वर्धी क्षेत्र को विभज्योतिकी क्षेत्र कहते है, इस क्षेत्र की कोशिकायें निरन्तर विभाजित होकर कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि कर तने की लम्बाई बढ़ाने में सहयोग प्रदान करती है।

2. दीर्घीकरण क्षेत्र – विभज्योतिकी क्षेत्र के नीचे दीर्घीकरण क्षेत्र होता है। विभज्योतिकी क्षेत्र मे बनी कोशिकाओं की इस क्षेत्र में लम्बाई में वृद्धि होती है । इस प्रकार विभज्योतिकी एवं दीर्घीकरण क्षेत्र में होने वाली क्रियाओं के कारण तने की लम्बाई में वृद्धि होती है।

3. परिपक्वन क्षेत्र – इस क्षेत्र में कोशिकाएं अपना पूर्ण आकार प्राप्त कर परिपक्व हो जाती है तथा विभिन्न प्रकार के ऊतकों में विभेदित होने लगती है (चित्र 3.16)।

तने के प्रकार

तने को उनकी आकृति, सतह, प्रकृति एवं आकारिकी के आधार पर विभिन्न भागों में बांटा जाता है।

1. तने की आकृति के आधार पर – तने आकृति में विभिन्न प्रकार के होते हैं जो निम्नानुसार है :

(अ) बेलनाकार (Cylindrical) – अधिकांश पौधों में तने लम्बे, गोल, सिलेण्डर के समान होते है। ऐसे तनों को बेलनाकार तने कहते है।

(ब) त्रिकोणीय (Triangular) – कुछ पौधों जैसे :– नरकुल में तने त्रिभुजी होते है, ऐसे तने त्रिकोणीय कहलाते हैं।

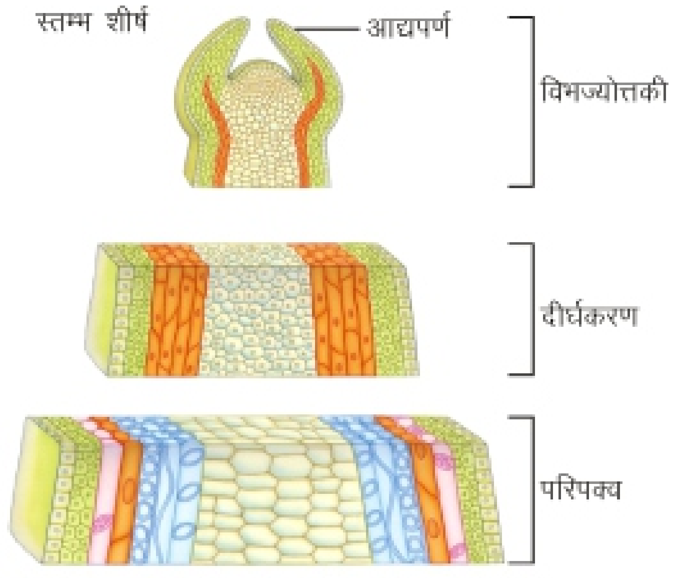

चित्र 3.16 : तने के शीर्ष के वृद्धि क्षेत्र

(स) चतुष्कोणिय (Squared) – तुलसी, साल्विया एवं लुकास पौधों के तने चतुर्भुजी होते है अतः चतुष्कोणीय तने कहलाते है ।

(द) पसलीदार (Ribbed)– कुछ तनों जैसे :– काजूराइना में तने में लम्बाई में खांचे व कंटक मिलते हैं तथा ये खांचे एवं कंटक एक दूसरे के एकान्तर क्रम में विन्यासित रहते हैं। अतः इस प्रकार के तनां को पसलीदार तने कहते हैं।

(य) संधित (Joint)– कुछ पौधों जैसे गन्ना और बांस में अशाखित तनों पर स्पष्ट फूली हुई पर्व संधिया होती है ,जो ऐसे लगती है जैसे कि अलग–अलग पर्वो के जुडने से बना हो अतः संधित तना कहते हैं।

(र) नलीदार (Tubular) – कुछ पौधे जैसे धनियां एवं बांस आदि में तना ठोस न होकर खोखला होता है, अतः इन्हें नलीदार तने कहते है।

2. तने की सतह के आधार पर – तने की सतह के आधार पर इन्हें निम्न प्रकार से विभेदित किया जा सकता है–

(अ) अरोमिल (Glabrous) – ऐसे तने जिनकी सतह चिकनी पायी जाती है, विभिन्न प्रकार की अतिवृद्धियाँ नहीं पायी जाती है ऐसे तनों को अरोमिल तने कहते हैं।

(ब) रोमिल (Hairy) – कुछ पौधों जैसे सूर्यमुखी, लौकी एंव टमाटर आदि में तनें की सतह पर विभिन्न प्रकार की अतिवृद्धियाँ पायी जाती है जिन्हें रोम कहते हैं। ये रोम बहुकोशिकीय होते हैं। कुछ पौधों जैसे तम्बाकू की सतह पर पाये जाने वाले रोम से चिपचिपा स्त्राव निकलता है अतः इन रोमों को ग्रन्थिल रोम कहते है। जबकि कुछ अतिवृद्धियाँ जन्तुओं से पौधों की रक्षा करती है, इन्हें दंश रोम कहते है। जैसे :– बिच्छुबटी।

3. तने की प्रकृति के आधार पर – भूमि पर तने की उपस्थिति के आधार पर तनों को निम्न प्रकार से विभेदित किया जाता है–

(अ) वायवीय (Areal) – तना भूमि के ऊपर मिलता है, वायव तना कहलाता है।

(ब) भूमिगत (Underground) – पौधों के तने भूमि की सतह के नीचे रहते है।

(स) उर्ध्व (Erect) – जो वायव तने भूमि पर सीधे खड़े रहते है ,उन्हे उर्ध्व तना कहते है।

(द) दुर्बल (Weak) – वो पौधे जो भूमि पर सीधे खड़े नहीं हो सकते, इस वर्ग में रखे जाते हैं, ये दो प्रकार के होते हैं।

1. विसर्पी (Creeper)– दुर्बल तने होते है एवं भूमि पर लेटे हुए टेढे – मेड़े बढ़ते है या लेटे हुए सीधे बढ़ते जाते हैं विसर्पी कहलाता है।

2. आरोही (Climber) – कुछ पौधे जो दुर्बल तो होते है, पर भूमि पर रेंग कर नहीं बढ़ते, वरन आस–पास के वृक्ष, झाड़ी, चट्टानें एवं दीवारों आदि पर चढ़कर प्रकाश की ओर बढ़ते हैं। कुछ पौधो में आरोहण के लिये विशेष अंग होते है, परन्तु कुछ पौधों में तना स्वयं ही लिपटकर ऊपर बढ़ता है, आरोही तने कहलाते हैं।

तने की आकारिकी के आधार पर

पौधों को तने की आकारिकी के आधार पर निम्न वर्गो में बांटा जाता है–

1. शाक (Herb) – इन पौधों के तने हरे, छोटे, और कोमल होते है परन्तु सीधे खड़े होने के लिये पर्याप्त दृढ़ होते हैं। ये एक वर्षीय, द्विवर्षीय या बहुवर्षीय हो सकते है। उदाहरणः– फसली पैाधे।

2. झाड़ी (Shrub) – ये बहुवर्षीय पौधे होते हैं। इनके तने, शाकीय तनों की तुलना में कठोर एवं काष्ठीय और अधिक लम्बे होते हैं। इनमें शाखायें अनेक होती है तथा इनकी मोटाई मूल तने के समान होती है अतः इनमें तने और शाखाओं में विभेद करना कठिन होता है, उदाहरण :– झरबेरी।

3. वृक्ष (Tree) – इनके तने शाक एवं झाड़ी की तुलना में बहुत अधिक लम्बे, मोटे और काष्ठीय होते हैं। जैसे :– नीम और खेजड़ी

तने के रूपान्तरण

पौधे में तना अपने सामान्य कार्य के साथ–साथ कभी विशेष कार्यों जैसे प्रतिकूल परिस्थितियों में पौधे को जीवित रखने,

कायिक प्रर्वधन, खाद्य संग्रहण एवं प्रतिरक्षी अंगो में रूपान्तरित हो जाते है। भूमि पर तने की स्थिति के आधार पर इन्हें तीन भागों में बांटा जा सकता है–

1. भूमिगत रूपान्तरण
2. अधःवायव या भूपृष्ठीय रूपान्तरण
3. वायवीय रूपान्तरण

1. स्तम्भ के भूमिगत रूपान्तरण – इन तनों का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाता है और भोजन संग्रहण के कारण अत्यंत मांसल हो जाते हैं। इनके आकार एवं आकृति में विविधता पायी जाती है तथा ये पौधे को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रखते है (चित्र 3.17)। इनकी संरचना के अनुसार ये कई प्रकार के होते है :–

चित्र 3.17 : स्तम्भ के भूमिगत रूपान्तरण
(अ) प्रकन्द (ब) कन्द (स) शल्क कन्द (द) घनकन्द

(अ) प्रकन्द (Rhizome) – प्रकंद भूमि में क्षैतिज रहता है तथा भूमि के समानान्तर वृद्धि करता है। यह अनियमित आकार का मोटा, मांसल एवं चपटा होता है। इसमें पर्व छोटे व पर्वसंधियाँ निकट होती हैं। पर्व संधियों पर शल्क पर्ण पाये जाते हैं, जो कक्षस्थ कलिका की सुरक्षा करते हैं। अनुकूल ऋतु में अन्तस्थ कलिका से वायव प्ररोह परिवर्धित होते हैं, और कक्षस्थ कलिका मोटी, मांसल, भूमिगत शाखा को बनाती है। प्रकंद के निचले भाग से अनेक अपस्थानिक जड़े निकलती हैं। प्रकन्द का वृद्ध भाग नष्ट हो जाने पर प्रकंद की शाखायें एक दूसरे से अलग हो जाती हैं और प्रत्येक शाखा एक नया पौधा बनकर वृद्धि करती है, उदाहरण :– अदरक।

(ब) कन्द (Tuber) – इस प्रकार के तने के रूपान्तरण में मुख्य तना वायव होता है तथा इसका आधार भाग भूमिगत होता है। तने के भूमिगत भाग पर पर्व संधियों पर शल्की पर्ण होते है, जिनके कक्ष में कक्षस्थ कलिका होती है। इन कक्षस्थ कलिकाओं से भूमिगत शाखायें उत्पन्न होती हैं एवं इन शाखाओं के सिरे फूलकर गोलाकार हो जाते हैं, जिन्हे कंद कहते हैं। इनका उपयुक्त उदाहरण आलू है। शाखा के समान कंद पर भी पर्व संधियों पर उपस्थित शल्क पर्ण के कक्ष में कक्षस्थ कलिकायें होती हैं, जिन्हें सामान्य बोलचाल में आंखें कहते हैं। आंखें युक्त कंद को बोने से कक्षस्थ कलिका से प्ररोह एवं अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं जिससे स्वतंत्र पौधा बन सकता है। आलू की खेती इसी विधि द्वारा की जाती है।

(स) शल्क कंद (Bulb) – शल्क कंद में स्तम्भ बहुत छोटा, उत्तल या शंक्वाकार तश्तरी के समान गोल तथा चपटा होता है। तने की ऊपरी सतह पर कई गुद्देदार शल्क पर्ण होते है, जो शुष्क शल्क पर्णो से घिरे रहते हैं। तने की निचली सतह से अनेक अपस्थानिक जड़े निकलती है। स्तम्भ की अंतस्थ कलिका से वायव प्ररोह बनता है। उदाहरण :– प्याज, लहसुन, लिली।

(द) घनकंद (Corm) – यह मोटा गूद्देदार भूमिगत तना है जो प्रकन्द का संघनित रूप है तथा मृदा में उदग्र दिशा में बढ़ता है। घनकंद प्राय गोलाकार होता है परन्तु यह सिरे व आधार भाग पर चपटे होते है। प्रकंद के समान इन पर भी पर्व संधियों पर भूरे रंग के शल्क पर्ण पाये जाते है। इन शल्क पर्णो के कक्ष में कक्षस्थ कलिकायें निकलती है जिनसे पुत्री घनकंद बनते है। अनुकूल परिस्थितियों में अतंस्थ कलिका से वायव प्ररोह बनता है जबकि घनकंद के आधार भाग से तथा कभी–कभी पार्श्व भाग से अपस्थानिक जड़े निकलती है। प्रतिवर्ष एक पर दूसरा घनकंद बन जाता है और पुराना वृद्ध घनकंद नष्ट हो जाता है एवं पुत्री घनकंद अलग होकर स्वतंत्र पौधे बन जाते हैं। उदाहरण :– सूरण, जमीकंद, ग्लेडिओलस और केसर आदि।

2. स्तम्भ के अधःवायव या भूपृष्ठीय रूपान्तरण – कुछ पौधों में तना एवं शाखायें भूमि की सतह पर श्यान स्थिति में वृद्धि करते है तथा इनका कुछ भाग सतह पर व कुछ भाग भूमि की सतह के नीचे हो सकता है । इस कारण इन्हे अधः वायव या भूपृष्ठीय स्तम्भ भी कहते हैं । वहीं जलीय पौधों में कुछ ऐसी शाखायें होती हैं जो जल के भीतर वृद्धि करती हैं (चित्र 3.18)।

शाखाओं की उत्पत्ति, आकारिकी और कायिक प्रवर्धन की विधि के आधार पर अधःवायव रूपान्तरणों को निम्न चार प्रकार में बांटा जा सकता है (चित्र 3.18)।

चित्र 3.18 : स्तम्भ के अधःवायव रूपान्तरण

(अ) उपरिभूस्तारी (ब) अंतःभूस्तारी (स) भूस्तारी (द) भूस्तारिका

(अ) उपरिभूस्तारी (Runner) – इस रूपान्तरण में पौधे के मुख्य तने से निकली शाखाये भूमि की सतह पर रेगंती हुई फैलती है। इनमें पर्व अधिक लम्बे होते है एवं पर्व सधियों से रेशेदार अपस्थानिक जड़ें निकलती है और कक्षस्थ कलिकायें अन्य विसर्पी शाखाओं को बनाती है। रेशेदार अपस्थानिक जड़ें इन शाखाओं को आवश्यक जड़ एवं लवण उपलब्ध कराती है। अतः इन शाखाओं को यदि पितृ पौधे से अलग कर दिया जाये तो भी स्वतंत्र पौधे के रूप में वृद्धि करने लग जाते है। इसका उपयुक्त उदाहरण :– दूब घास, ब्राम्ही एवं मार्सिलिआ है।

(ब) अंतःभूस्तारी (Sucker) – इस रूपान्तरण में पौधे के वायव तने का आधार भाग भूमिगत होता है तथा इस भाग की कक्षस्थ कलिकाओं से जो शाखायें बनती है, वह भूमि में कुछ दूर तक तिरछी या क्षैतिज स्थिति में चलकर भूमि से बाहर निकलकर एक वायवीय प्ररोह बन जाती है। इन शाखाओं को अंतः भूस्तारी कहते हैं। इनकी पर्व संधियों से भी अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं एवं इनसे अन्य अंतःभूस्तारी परिवर्धित हो जाते हैं। उदाहरण :– गुलदाउदी, पुदीना और युक्का आदि।

(स) भूस्तारी (Stolen) – तने के इस रूपान्तरण में भूमिगत भाग से लम्बी एवं पतली शाखायें निकलती है जो भूमि में इसके क्षैतिज स्थिति में बढ़ती जाती है और कुछ दूर जाने पर अन्तस्थ कलिका से एक वायव प्ररोह तथा अपस्थानिक जड़े परिवर्धित हो जाती है और नया पौधा बन जाता है। उदाहरण :– ड्रेसिना, कचालू, आइक्जोरा और स्ट्राबेरी आदि।

(द) भूस्तारिका (Offset) – तने के इस रूपान्तरण में जलीय पौधों में उपरिभूस्तारी की भांति जल के धरातल पर शाखायें फैलकर पर्वसंधि के नीचे की ओर अपस्थानिक जड़ें परिवर्धित होती है तथा ऊपर की ओर प्ररोह बनता है। इस रूपान्तरण को भूस्तारिका कहते हैं। उदाहरण :– पिस्टिआ, जलकुम्भी आदि।

3. स्तम्भ के वायवीय रूपान्तरण – कुछ पौधों में अन्तस्थ एवं कक्षस्थ कलिकायें विशेष कार्यों के लिये रूपान्तरित हो जाती है। प्रायः ये रूपान्तरण सामान्य तने से भिन्न दिखायी देते है अतः कायान्तरित तना कहते हैं। इन रूपान्तरणों को स्तम्भ प्रकृति, प्ररोह पर इनकी स्थिति तथा उत्पत्ति स्थल द्वारा पहचाना जाता है। मुख्यतः चार प्रकार के वायव स्तम्भ रूपान्तरण पाये जाते है (चित्र 3.19)।

चित्र 3.19 : स्तम्भ के वायवीय रूपान्तरण

(अ) स्तम्भ प्रतान (Stem tendril) – कुछ आरोही पौधों में अतंस्थ या कक्षस्थ कलिकायें पतले हरे धागे सदृश्य संरचना में परिवर्तित हो जाती है, जो पौधे के आरोहण में सहायक होते है, इन्हें स्तम्भ प्रतान कहते हैं। ये अतंस्थ या कक्षस्थ स्थिति में मिलते है। उदाहरण :– अंगूर, ऐन्टीगोनन आदि।

(ब) स्तम्भ कण्टक (Stem spines) – जब तने की कक्षस्थ अथवा अंतस्थ कलिका लम्बी, सीधी, कठोर और नुकीली संरचना में रूपान्तरित हो जाती है तो इस संरचना को स्तम्भ कण्टक कहते हैं। कलिका के समान इनकी स्थिति कक्षस्थ या अतंस्थ होती है और कुछ पौधों जैसे :– दूरान्ता, मेयटिनस ओवाटा में इन पर फूल भी लगे रहते है। इनमें सवहन तत्रं भी पाया जाता है। उदाहरण :– दूरान्ता, नींबू।

(स) पर्णाभ स्तम्भ (Phylloclade) – कुछ पौधों मे स्तम्भ या पार्श्व शाखायें हरी, चपटी फैली हुई, पत्ती के समान होती है, इस रूपान्तर को पर्णाभ स्तम्भ कहते हैं। इनमें पत्तियां प्रायः छोटी और शल्की, कंटकी होती है तथा पर्णाभ स्तम्भ पत्ती के सभी कार्य करता है। उदाहरण :– नागफनी, रसकस और कोकोलोबा।

(द) पर्णाभ पर्व (Cladode) – यह पर्णाभ स्तम्भ का छोटा रूप है। इसमें मुख्य तना सामान्य होता है और पत्तियां बहुत छोटी ओर शल्की होती है। पार्श्व शाखायें छोटी, हरी, चपटी, एवं गूद्देदार होती हैं। ये छोटे पर्णाभ स्तम्भ केवल एक पर्व वाले होते हैं। इसी कारण इस रूपान्तर को पर्णाभ पर्व कहते हैं। उदाहरण :– शतावरी/एस्पारागस।

(य) पत्र प्रकलिका (Bulbis) – कुछ पौधों में कक्षस्थ कलिका या अपस्थानिक कलिका बहुकोशिकी गूद्देदार संरचना में रूपान्तरित हो जाती है, जिसमें पर्याप्त खाद्य पदार्थ संग्रहित रहता है। इस प्रकार के रूपान्तरण को पत्र–प्रकलिका कहते हैं। यह टूटकर भूमि पर गिर जाती है और कायिक विधि द्वारा नये पौधे को जन्म देती है। उदाहरण :– खट्टी बूटी, रामबांस, लहसुन, आदि।

तने के कार्य

1. शाखा, पत्तियों तथा कलियों को धारण करना – तने से विभिन्न शाखाएं निकलती हैं, जिन पर पत्तियां, कक्षस्थ एवं पुष्प कलिकायें, एवं पुष्प आदि उपस्थित होते है। इस प्रकार तना इन सभी संरचनाओं को आधार प्रदान करता है या धारण करता है।

2. संवहन – जड़ों द्वारा अवशोषित लवणों एवं जल को तना पत्तियों, शाखाओं व अन्य भागों तक पहुँचाता है।

3. खाद्य संग्रहण – विशेष परिस्थितियों में स्तम्भ खाद्य संग्रह का कार्य भी करते है। उदाहरण :– आलू, अरबी, जमीकंद आदि सभी में प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थ संचित रहते हैं।

4. खाद्यनिर्माण – तरूण तने एवं शाखायें हरी होती है एवं पर्णाभ स्तम्भ व पर्णाभ पर्व जैसे रूपान्तरण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा खाद्य निर्माण का कार्य भी करते है।

5. कायिक प्रवर्धन – लगभग सभी भूमिगत तने जैसे कंद, प्रकंद, शल्ककंद, धनकंद और सभी प्रकार के अधःवायव तने जैसे उपरी भूस्तारी, भूस्तारी और भूस्तारिका आदि कायिक प्रवर्धन के साधन हैं।

6. विशेष कार्य – स्तम्भ का प्रतान रूपान्तरण–आरोहण व कण्टक प्रतिरक्षा में सहायक होता है। पर्णाभस्तम्भ, पर्णाभपर्व जैसे रूपान्तरण वाष्पोत्सर्जन को कम करते है एवं प्रकाश संश्लेषण का कार्य भी करते हैं।

पत्ती की आकारिकी एंव रूपान्तरण

पर्ण, स्तम्भ या शाखा की एक पतली, चपटी और फैली हुई पार्श्व अतिवृद्धि है, जो पर्व संधि पर उत्पन्न होती है, जिसके कक्ष में एक कक्षस्थ कलिका होती है।

पर्ण के विभिन्न भाग – पीपल, बरगद आदि प्रारूपिक पर्ण के उपयुक्त उदाहरण हैं एवं इनके द्वारा पर्ण का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है (चित्र 3.20)। एक प्रारूपिक पर्ण में निम्नलिखित मुख्य भाग होते है– 1. पर्णाधार 2. पर्णवृन्त 3. पर्णफलक।

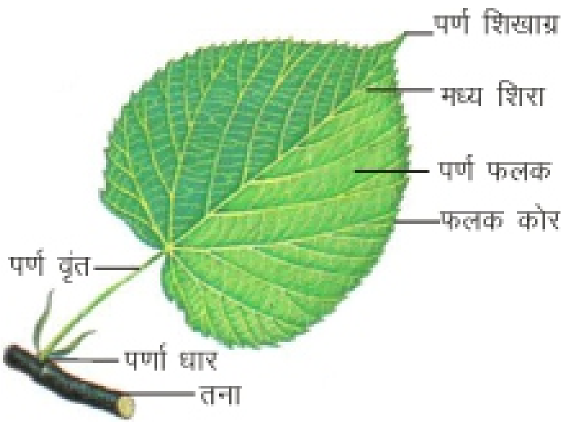

चित्र 3.20 : पर्ण के विभिन्न भाग

पर्णाधार (Leaf base) – पत्ती का वह भाग जो पर्वसंधि से जुड़ा रहता है, पर्णाधार कहलाता है। एक बीजपत्री पौधों जैसे :– गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा आदि पर्णो में पर्णाधार फैलकर चौड़ा हो जाता है तथा तने के पर्व को घेरे रहता है, इन्हें पर्ण आच्छद (Leaf sheath) कहते हैं। केले का तना मुख्यतः पर्णाच्छदों से बना होता है। कुछ द्विबीजपत्री पौधों जैसे :–कपास, गुड़हल आदि के पर्णाधार से दो छोटी–छोटी पार्श्व अतिवृद्धियाँ निकलती है जिन्हें अनुपर्ण (Stipules) कहते है। जिन पर्णो में अनुपर्ण पाये जाते है उन्हें अनुपर्णी (Stipulate) तथा जिन पर्णो में अनुपर्ण नहीं होते है उन्हे अनअनुपर्णी कहते हैं।

अनुपर्ण – पर्णाधार पर पायी जाने वाली दो पार्श्व अतिवृद्धियों को अनुपर्ण कहते है (चित्र 3.21)। यह निम्न प्रकार के होते है :–

1. अलग्न पार्श्व अनुपर्ण (Free lateral stipules) – यह छोटे, संकरे, पतली और हरी संरचनायें होती है, उदाहरण :– गुड़हल एवं कपास आदि।

2. संलग्न (Adanate) – अनुपर्ण पर्णवृन्त के साथ कुछ दूरी तक जुड़े रहते हैं अतः इन्हें संलग्न अनुपर्ण कहते हैं, उदाहरणः– गुलाब।

चित्र 3.21 : विभिन्न प्रकार के अनुपर्ण

3. पर्णिल (Foliaceous) – अनुपर्ण बड़े, चौड़े, पर्ण सदृश्य होते है, उदाहरण :– जंगली मटर।

4. शल्की (Scaly) – यह पर्णहरित रहित, छोटे, शुष्क झिल्ली सदृश अनुपर्ण को, शल्की अनुपर्ण कहते हैं, उदाहरण :– डिस्मोडियम।

5. प्रतानी अनुपर्ण (Tendrilar stipules) – इनमें अनुपर्ण पतले, हरे, धागे, सदृश्य संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं, उदाहरणः– स्माईलेक्स।

6. अनुपर्ण शूल (Spiny stipules) – इनमें अनुपर्ण शूलनुमा संरचना में परिवर्तित हो जाते है, उदाहरण :– बबूल।

पर्णवृन्त (Petiole) – पर्णाधार एवं पर्णफलक के बीच के भाग को जोड़ने वाली पतली प्रायः गोलाकार लम्बी संरचना को पर्णवृन्त कहते हैं। पर्णवृंत पर्णफलक को तने या शाखाओं से पृथक रखता है। जिससे इन्हें आसानी से प्रकाश प्राप्त हो सके। अधिकांश एक बीजपत्री पौधों जैसे :– धान, गेहूँ, मक्का, बांस आदि की पत्तियों में पर्णवृन्त नही पाये जाते हैं। इस प्रकार की पर्ण को अवृन्तीय (Sessile) पर्ण कहते है। जबकि अधिकांश द्विबीजपत्री पौधों जैसे :– आम, बरगद, पीपल, तुलसी आदि में पर्णवृन्त पाया जाता है। इस प्रकार की पर्ण सवृन्तीय (Petiolate) पर्ण कहलाती है।

पर्णवृन्त के रूपान्तर – मटर या नींबू में पर्णवृन्त के दोनों तरफ पार्श्व में दो पंख सदृश्य अतिवृद्धियां मिलती है। ऐसे पर्णवृन्त को सपक्ष कहते हैं। जल सतह पर तैरने वाले कुछ जलीय पौधे जैसे कि जलकुम्भी में पर्णवृन्त फूला हुआ गोलाकार और स्पंजी हो जाता है। इनमें अनेक वायु प्रकोष्ठ पाये जाते हैं। जिससे जल सतह पर तैरते रहते है। ऐसे पर्णवृन्त को प्लव (Float) कहते हैं।

जबकि नास्ट्रूशियम जैसे पौधों में पर्ण वृन्त लम्बे कोमल प्रतानों के समान हो जाते हैं और पौधों के आरोहण में सहायक होते हैं। ऐसे पर्णवृन्त को प्रतानी पर्णवृन्त कहते है। जबकि आस्ट्रेलियन अकेशिया में पर्णवृन्त फैलकर चपटा पतला पत्ती के समान हो जाता है एवं प्रकाश संश्लेषण का कार्य करता है। पर्णवृन्त के इस रूपान्तरण को पर्णाभवृन्त कहते है।

पर्ण फलक (Leaf blade) – पर्णवृन्त के अगले सिरे से जुड़े बड़े, पतले, चपटे, कोमल हरे भाग को पर्णफलक कहते है। पर्णफलक के अगले भाग को पर्ण शिखाग्र (Leaf apex) और किनारों को फलक कोर (Leaf margin) कहते हैं। पर्ण फलक के आधार से इसके शिखाग्र तक पर्णवृन्त से जुड़ी एक संरचना होती जिसे मध्यशिरा (Mid vein) कहते हैं। मध्य शिरा के पाईव में अनेक छोटी–छोटी शिरायें निकलती है जो शिखाग्र तथा फलक कोर तक फैली रहती है, इन्हें पार्श्व शिरायें कहते है। पार्श्व शिराओं से अनेक छोटी–छोटी पतली नलीसदृश्य संरचनायें निकलती है जिन्हे शिरीकायें (Veinlets) कहते हैं। शिरीकायें पर्णफलक में विभिन्न दिशाओं में फैली रहती है तथा परस्पर मिलकर जाल सा बनाती है, जिसे शिराविन्यास कहते है। शिरा और शिरीकायें मिलकर पर्ण फलक का कंकाल बनाती है एवं इसे फैली हुई अवस्था में बनाये रखती है।

पर्ण फलक का आकार तथा आकृति

पर्णफलक के आकार एवं आकृति में विभिन्नतायें पायी जाती हैं। कुछ पौधों में पर्ण फलक बहुत छोटा होता है जैसे :– लिम्ना और स्पोरोडिला (2 से 3 मी.मी.) जबकि कुछ पौधों में पर्णफलक विशाल होता है जैसे :– मोन्सटिरिआ डिलिसिओसा (2 मीटर तक लम्बा), जल लिली (1.2 मीटर) आदि (चित्र 3.22)।

पर्णफलक की विभिन्न आकृतियां मिलती है जो निम्न प्रकार है :–

1. सूच्याकार (Acicular) – पर्णफलक लम्बा, बेलनाकार, सुई सदृश्य होता है, उदाहरण :– चीड़।

2. रेखाकार (Linear) – लम्बा संकीर्ण, चपटा, रेखाकार, पर्णफलक, उदाहरण :– गेहूँ , धान आदि।

3. भालाकार (Lanceolate) – भाले के समान फलक या उत्तल लैंस की भांति पर्णफलक, उदाहरण :– कनेर।

4. दीर्घवृत्ताकार (Elliptical) – पर्णफलक की लम्बाई, चौड़ाई की अपेक्षा अधिक तथा शीर्ष व आधार पर अपेक्षाकृत कम चौड़े मिलते हैं, उदाहरण :– अमरूद एवं आम।

5. अण्डाकार (Ovate) – फलक अण्डाकार होता है। शीर्ष भाग आधार भाग से कम चौड़ा होता है, उदाहरण :– गुड़हल।

6. प्रतिलोमित अण्डाकार (Obovate) – जब अण्डाकार पर्णफलक का शीर्ष भाग आधार भाग से अधिक चौड़ा होता है

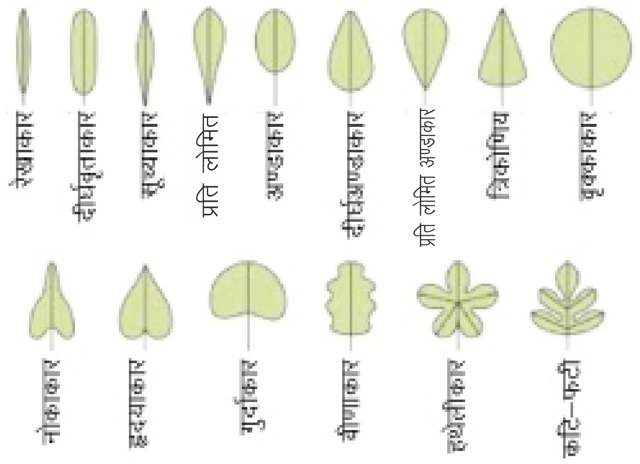

चित्र 3.22 : विभिन्न प्रकार की पर्णफलक

तो इसे प्रतिलोमित अण्डाकार पर्णफलक कहते हैं, उदाहरण :– बादाम।

7. हृदयाकार (Cordate) – पर्णफलक की आकृति हृदय के समान होती है। उदाहरण :– पीपल, पोथोस, गिलोय, पान आदि।

8. वर्तुल (Orbicular) – पर्णफलक वर्ताकार होता है, उदाहरण :– कमल।

9. वृक्काकार (Reniform) – पर्णफलक की आकृति गुर्दे या वृक्क के समान होती है।

10. तिर्यक (Oblique) – पर्णफलक के मध्य सिरे के दोनों ओर के भाग एक समान नहीं होते हैं, उदाहरण :– नीम, बीगोनिया।

11. बाणाकार (Sagittate) – पर्णफलक लोहे के बाण के फलक के समान होते है, उदाहरण :– साजिटारिआ।

12. भालाभ (Hastate) – भालाकार पर्णफलक की दोनों पालियों के आधार भाग बाहर की ओर निकले होते हैं, उदाहरण:– आईपोमिया, टाईफोनिअम।

13. वीणाकार (Lyrate) – पर्णफलक में विषम संख्या में पालियां होती है। अतंस्थ पाली बड़ी होती और नीचे वाली पालियां क्रमशः छोटी होती चली जाती है और पर्णफलक वाद्य यंत्र वीणा के समान दिखाई देती है, उदाहरण :– सरसों ,मूली।

पर्णफलककोर

पर्णफलक के किनारे को फलक कोर कहते है। प्रमुख फलक कोर निम्नलिखित प्रकार के होते हैं (चित्र 3.23) :–

1. अछिन्न (Entire) – पर्णफलक कटा–फटा नहीं होकर सीधा होता है, उदाहरण :– आम, अमरूद, कनेर।

2. तंरगित (Wavy) – फलककोर लहरदार होती है, उदाहरण :– पीपल, अशोक आदि।

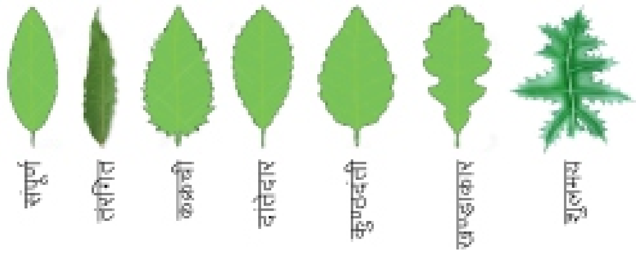

चित्र 3.23 : विभिन्न प्रकार के पर्णफलक कोर

3. कक्रची (Serrate) – फलककोर आरे के दाँतों के समान होती है, उदाहरण :– गुलाब,व नीम के पर्णक।

4. पश्चदंती (Truncate) – फलक कोर कक्रची होता है परन्तु कटान आगे न होकर पीछे की ओर होती है।

5. श्वदंती (Dentate) – फलक कोर कक्रची होता है, परन्तु कटान आगे न होकर समकोण पर होता है।

6. कुण्ठदंती (Crinate) – फलक कोर कक्रची होता है। परन्तु कटानों के सिरे नुकीले न होकर गोलाकार होते हैं, उदाहरण :– ब्राम्ही, ब्रायोफिलम।

7. शूलमय (Spinous) – पर्णफलक की कोर पर शूल पाये जाते हैं, उदाहरण :– सत्यानाशी।

पर्णफलक शिखाग्र

पर्णफलक के शीर्षस्थ भाग को फलक शिखाग्र कहा जाता है। यह विभिन्न प्रकार के होते हैं (चित्र 3.24) –

1. निशिताग्र (Acute) – शिखाग्र संकरा एवं नुकीला होता है। पार्श्व फलक कोर न्यूनकोण पर मिलते हैं, उदाहरण :– गुड़हल, कनेर, आदि।

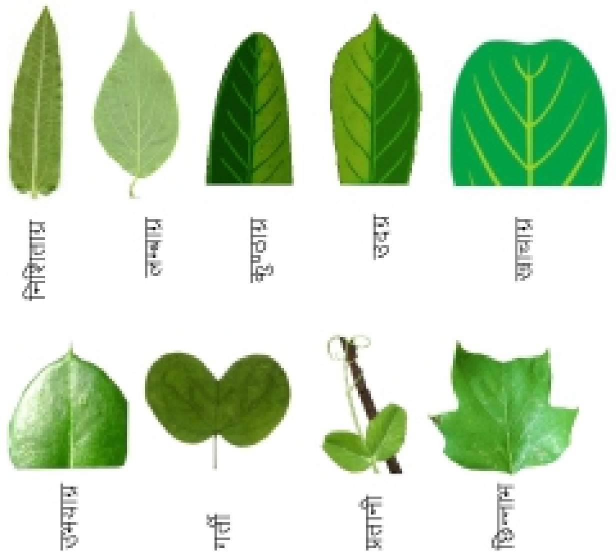

चित्र 3.24 : विभिन्न प्रकार के पर्णफलक शिखाग्र

2. लम्बाग्र (Acuminate) – शिखाग्र संकरा, लम्बा पर्णफलक से काफी आगे निकला होता है। पार्श्व फलक कोर न्यूनकोण बनाती है, उदाहरण :– अशोक, पीपल, आदि।

3. कुण्ठाग्र (Obtuse) – शिखाग्र गोल होता है तथा पार्श्व फलक कोर अधिक कोण बनाते है, उदाहरण :– बरगद।

4. उदग्र (Mucronate) – यदि शिखाग्र गोल हो परन्तु ऊपर हल्की सी चोंचनुमा नोक निकली हो, उदाहरण :– आइक्जोरा, शीशम, आक आदि।

5. खाचाग्र (Retuse) – फलक का शिखाग्र चौड़ा होता है। परन्तु इसमें छिछली खाचें नुमा संरचना पायी जाती है, उदाहरण :– पिस्टिआ।

6. उभयाग्र (Cuspidate) – फलक का शीर्ष लम्बा, कठोर, नुकीला या कांटे नुमा होता है, उदाहरण :– केवड़ा, खंजूर आदि।

7. गर्ती (Emarginate) – कुण्ठाग्र के समान ही होता है परन्तु मध्य भाग में एक गहरा गर्त होता है, उदाहरण :– कचनार।

8. प्रतानी (Tendrillar) – पर्ण फलक शिखाग्र पतले धागेनुमा संरचना में परिवर्तित हो जाते हैं, उदाहरण :– ग्लोरिलिली।

9. छिन्नाभ (Truncate) – पर्ण फलक शिखाग्र अनुप्रस्थ काट में समान सपाट होते हैं, उदाहरण :– फिसटेलपाम।

पर्णफलक सतह

पर्णफलक सतह में भी विभिन्नतायें पायी जाती है जो निम्न प्रकार से विभाजित की जा रही है (चित्र 3.25) –

चित्र 3.25 : विभिन्न प्रकार की पर्ण फलक सतह

1. अरोमिल (Glabrous) – सतह कोमल चिकनी होती है, उदाहरण :– गुडहल।

2. रोमिल (Hairy) – पर्णफलक पर रोम पाये जाते है, उदाहरण :– भिण्डी।

3. रूक्ष (Rough) – सतह खुरदरी होती है, उदाहरण :– लेन्टाना।

4. लसदार (Glutinous) – सतह चिपचिपी होती है, उदाहरणः– तम्बाकू।

5. नीलाम (Glaucous) – सतह गहरी हरी एवं चमकती हुई होती है, उदाहरण :– पीपल।

6. दीर्घलोमी (Villous) – सतह सधन रोमों से ढकी रहती है।

7. शूलमय (Spiny) – पर्णफलक सतह पर नुकीले कांटे या शूल पाये जाते हैं।

8. मोमी (Waxy) – पर्णफलक पर चिकनी मोम के समान परत पायी जाती है।

पर्ण शिराविन्यास

पर्ण फलक में शिराओं एवं शिरीकाओं के विन्यास को शिरा विन्यास कहते है। पर्ण शिराविन्यास मूलतः दो प्रकार का होता है–

1. जालिकावत् शिराविन्यास (Reticulate venation)
2. समानान्तर शिराविन्यास (Parallel venation)

1. जालिकावत् शिराविन्यास

इस प्रकार के शिराविन्यास में मुख्य शिरा या शिरायें, पार्श्व, शिरायें एवं शिरीकायें आपस में संबद्ध रहती है, तथा जाल के समान संरचना बनाती है, अतः जालिकावत शिराविन्यास कहते है (चित्र 3.26)। यह द्विबीजपत्री पौधों में पाया जाता है। इसे पुनः दो प्रकार से विभाजित किया जाता है :–

1. एकशिरीय या पिच्छाकार जालिकावत शिरा विन्यास (Reticulate unicostate) – इस प्रकार के शिराविन्यास में पर्णफलक में मुख्य शिरा के दोनों ओर पार्श्व शिरायें निकलती है, जो पर्णफलक एवं शीर्ष की ओर फैली रहती है। पार्श्व शिराओं

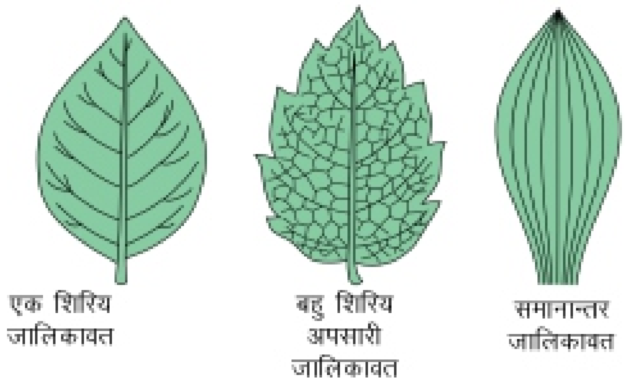

चित्र 3.26 : पर्ण के विभिन्न प्रकार के जालिकावत शिराविन्यास

से अनेक छोटी शिरीकायें निकलती है जो विभिन्न दिशाओं में फैली रहती है, उदाहरण :– आम, अमरूद, पीपल, जामुन आदि।

2. बहुशिरीय या हस्ताकार जालिकावत शिराविन्यास (Reticulate multicostate) – इस प्रकार के शिराविन्यास में पर्णफलक के आधार भाग से अनेक मुख्य शिरायें निकलती है जो पर्णफलक में फैली रहती है तथा इनसे निकलने वाली पार्श्व शिरायें एवं शिरीकायें एक जाल सा बनाती है। यह दो प्रकार का होता है–

(अ) हस्ताकार या बहुशिरीय अपसारी (Reticulate multicostate divergent) – पर्णवृन्त के अग्रभाग से अनेक मुख्य शिरायें निकलती है एवं एक दूसरे के निकट होती है। लेकिन जैसे–जैसे ये पर्णफलक एवं शिखाग्र की ओर बढ़ती है इनके मध्य की दूरी बढ़ती जाती है। इस क्रम को अपसारी कहते हैं, अतःशिराविन्यास को बहुशिरीय अपसारी शिराविन्यास कहते हैं।

(ब) बहुशिरीय अभिसारी (Reticulate multicostate convergent) – पर्णवृन्त के अग्रभाग से अनेक मुख्य शिरायें निकलती है जो पर्णफलक के आधार भाग में एक दूसरे के निकट, मध्य भाग में दूर तथा शीर्ष भाग पर पुनः एक दूसरे के निकट हो जाती है। अतः इस व्यवस्था को अभिसारी एवं शिराविन्यास को बहुशिरीय अभिसारी शिराविन्यास कहते हैं, उदाहरण :– तेजपात, बेर, दालचीनी आदि।

समानान्तर शिराविन्यास

इस प्रकार के शिराविन्यास में मध्यशिरा या पर्णवृन्त के अगले सिरे से, पर्णफलक में कई शिराएं एक दूसरे के लगभग समानान्तर फैली रहती है, लेकिन इनमें जाल नहीं बनता है। समानान्तर शिराविन्यास अधिकांशतः एकबीजपत्री पौधों में मिलता है, यह दो प्रकार का होता है –

1. एकशिरिय या पिच्छाकार
2. बहुशिरिय या हस्ताकार

1. एकशिरिय या पिच्छाकार समानान्तर शिराविन्यास (Parallel unicostate) – इस प्रकार के शिराविन्यास में पर्णफलक में एक मध्य शिरा होती है, इस मध्य शिरा से कई पार्श्व शिरायें एक दूसरे के समानान्तर निकलती है, जो क्रमशः फलक कोर और फलक शिखाग्र तक चली जाती है ये आगे पार्श्व शिराओं व शिरिकाओं में शाखित नहीं होती है, उदाहरण :– केला, अदरक, हल्दी आदि।

2. बहुशिरीय समानान्तर शिराविन्यास (Parallel multicostate or palmate) – इस प्रकार के शिरा विन्यास में पर्ण वृन्त के अगले सिरे से अनेक शिरायें निकलती है जो पर्ण फलक कोर एवं पर्ण शिखाग्र की ओर फैली रहती है। यह दो प्रकार का होता है–

(अ) बहुशिरीय अपसारी या हस्ताकार अपसारी (Parallel multicostate divergent) – इस प्रकार के पर्णशिरा विन्यास में पर्ण वृन्त के अगले सिरे से कई प्रमुख शिरायें निकलती है जो पर्ण फलक कोर एवं शिखाग्र की ओर अपसारित होती जाती है, इनसे पार्श्व शिरायें एवं शिरिकाये नहीं निकलती है अतः जाल नहीं बनाती है, उदाहरण :– ताड़, खजूर, नारियल।

(ब) बहुशिरीय अभिसारी (Parallel multicostate convergent) – इस प्रकार के शिरा विन्यास में शिरायें पर्ण वृन्त के अगले सिरे से पर्ण फलक के समानान्तर वक्रित रेखाओं के समान फैली रहती है और फलक के शीर्ष भाग में एक दूसरे के निकट आ जाती है, इनसे पार्श्व शिरायें एवं शिरिकायें नहीं निकलती है। अतः जाल नहीं बनाती है, उदाहरण :– बांस, गन्ना, गेहूँ, एवं घास आदि।

पर्ण के प्रकार

पर्ण दो प्रकार के होते हैं – 1. सरल पर्ण 2. संयुक्तपर्ण

1. सरल पर्ण – पर्णों के पर्ण फलक यदि अविभाजित और कटान रहित होते हैं तो ऐसे पर्णों को सरल पर्ण कहते हैं, उदाहरण :– पीपल, आम आदि।

2. संयुक्त पर्ण – जब पर्णफलक में कटान मध्यशिरा या पर्णवृन्त तक पहुँच जाते है तो पर्णफलक कई खण्डों या भागों में बंट जाता है। प्रत्येक खण्ड जो पर्णफलक का एक भाग होता है, पर्णफलक के समान दिखाई देता है, और इसे पर्णक (Leaf let) कहते हैं। पर्णकों युक्त पत्ती को संयुक्त पर्ण (Compound leaf) कहते हैं (चित्र 3.27 एवं 3.28)। संयुक्त पर्ण दो प्रकार के होते है–

1. पिच्छाकार संयुक्तपर्ण (Pinnate compound leaf)
2. हस्ताकार संयुक्तपर्ण (Palmate compound leaf)

1. पिच्छाकार संयुक्तपर्ण – इस प्रकार के संयुक्त पर्ण में पत्ती की मध्यशिरा को पिच्छाक्ष (Rachis) कहते हैं। पिच्छाक्ष पर पार्श्व में दोनों ओर कई पर्ण फलक लगे रहते हैं। इन पर्णो को पुनः निम्न भागों में विभाजित किया जाता है (चित्र 3.27)–

(अ) एक पिच्छकी संयुक्तपर्ण (Unipinnate compound leaf) – पर्ण की मध्यशिरा के दोनो ओर पर्णक लगे रहते है। जब पर्णक सम संख्या में होते है तो पत्ती को समपिच्छकी (उदाहरण :– अमलतास) व जब विषम संख्या में होते है तो विषम पिच्छकी (उदाहरण :– गुलाब) कहते हैं। पर्ण संख्या के आधार पर इसे निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है–

(i) एकपर्णकी – संयुक्त पर्ण में एक ही पर्णक मिलता है, उदाहरण :– डिसमोडियम गन्जिटिकुम।

चित्र 3.27 : पिच्छाकार संयुक्त पर्णो के प्रकार

(ii) द्विपर्णकी – पर्णकों की संख्या दो होती है, उदाहरणः– रीठा।

(iii) त्रिपर्णकी – संयुक्त पर्ण में तीन पर्णक होते है। उदाहरण :– ढाक, सेम।

(iv) चतुर्पर्णकी – संयुक्त पर्ण में चार पर्णक होते है–

(अ) बहुपर्णकी – जब पर्णकों की संख्या अधिक होती है तो बहुपर्णकी कहलाती है।

(ब) द्विपिच्छकी संयुक्त पर्ण (Bipinnate compound leaf) – एक पिच्छकी संयुक्त पर्ण के प्रत्येक पर्णक का फलक अपनी मध्य शिरा की ओर कटानों द्वारा द्वितीयक पर्णको में बंट जाता है। ऐसी सयुक्त पर्ण को द्विपिच्छकी कहते है । पर्ण की मुख्य शिरा प्रमुख अक्ष कहलाता है और पर्णकों की मध्यशिरा द्वितीयक अक्ष बनाती है, जिसके पार्श्व में पर्णक लगे रहते हैं। उदाहरण :– बबूल और गुलमोहर।

(स) त्रिपिच्छकी संयुक्त पर्ण (Tripinnate compound leaf) – द्विपिच्छकी पर्ण के पर्णकों के फलकों का कटान अपनी मध्य शिरा की ओर हो जाता है और प्रत्येक द्वितीयक पर्णक कई त्रितीयक पर्णको में बंट जाता है। पर्णफलक की मध्य शिरा प्राथमिक अक्ष बनाती है इस पर द्वितीयक अक्ष लगे रहते है, द्वितीयक अक्ष पर त्रितीयक अक्ष लगे रहते हैं जिन पर पार्श्व में दोनो तरफ पर्णक लगे रहते हैं, उदाहरण :– सेन्जना ।

(द) बहुपिच्छकी संयुक्त पर्ण (Decompound leaf) – जब पर्ण फलक तीन से अधिक बार विभाजित हो जाता है एवं पर्णफलक अनेक पर्णकों में बंट जाता है तो इस प्रकार की संयुक्त पर्ण को बहुपिच्छकी संयुक्त पर्ण कहते हैं, उदाहरण :– गाजर, धनिया और कॉसमॉस।

2. हस्ताकार संयुक्त पर्ण – जब हस्ताकार शिराविन्यास वाली बहुशिरीय पर्ण में पर्णफलक के कटान पर्णवृन्त तक पहुँच जाते है और पर्णफलक कई पर्णकों में विभक्त हो जाता है। ये पर्णक पर्णवृन्त पर उसी प्रकार लगे रहते है जैसे हथेली में अंगुलियां, तो इस प्रकार के संयुक्त पर्ण को हस्ताकार संयुक्त पर्ण कहते है, उदाहरण :– सेमल,भांग आदि। इस प्रकार की संयुक्त पर्ण को पर्णकों की संख्या के आधार पर पुनः निम्न प्रकार से विभाजित किया जाता है (चित्र 3.28) –

चित्र 3.28 : हस्ताकार संयुक्त पर्णो के प्रकार

(i) एकपर्णकी (Unifoliate) – इस प्रकार के संयुक्त पर्ण में पर्णवृन्त के अगले सिरे से केवल एक ही पर्णक जुड़ा रहता है, उदाहरण :– नींबू।

(ii) द्विपर्णकी (Bifoliate) – इस प्रकार के हस्ताकार संयुक्तपर्ण में पर्णवृन्त के अगले सिरे पर केवल दो पर्णक जुड़े रहते है, उदाहरण :– हार्डविकिया।

पर्णविन्यास (Phyllotaxy) – स्तम्भ पर पर्णों के व्यवस्थित होने या जुडने के क्रम को पर्णविन्यास कहते है। पौधों में प्रमुखतया तीन प्रकार का पर्णविंन्यास पाया जाता है – 1. एकान्तर (Alternate) 2.सम्मुख (Opposite) 3.चक्रिक (Whorled) (चित्र 3.29)।

1. एकान्तर (Alternate) – इस प्रकार के पर्णविन्यास में तने या शाखा पर प्रत्येक पर्व संधि पर एक पर्ण, एकान्तर क्रम में लगी रहती है। अर्थात् दूसरी पर्ण पर्व संधि पर लगी पर्ण के विपरीत दिशा में लगी रहती है, उदाहरणः– गुडहल, सरसों, सूर्यमुखी आदि।

2. सम्मुख (Opposite) – इस प्रकार के पर्णविन्यास में प्रत्येक पर्व पर दो पर्ण उत्पन्न होते है। इन्हें पर्ण युग्म भी कहते हैं, क्योंकि दो पर्ण एक दूसरे के सम्मुख स्थित होते है। ये दो प्रकार की होती हैं–

चित्र 3.29 : विभिन्न प्रकार के पर्ण विन्यास

(अ) सम्मुख क्रॉसित (Opposite decussate) – जब एक पर्वसंधि पर पाये जाने वाले पर्णयुग्म, दूसरे पर्वसंधि पर पाये जाने वाले पर्णयुग्म के साथ समकोण बनाते है तो इस प्रकार के पर्ण विन्यास को सम्मुख क्रासित पर्णविन्यास कहते है, उदाहरणः– आक, तुलसी, आदि।

(ब) सम्मुख अध्यारोपित (Opposite superposed) – जब एक पर्वसंधि पर पाये जाने वाले पर्ण युग्म के ठीक नीचे दूसरी पर्वसंधि पर पर्णयुग्म पाया जाता है तो पर्णविन्यास को सम्मुख अध्यारोपित पर्णविन्यास कहते है, उदाहरण :– अमरूद, जामुन, आदि।

3. चक्रिक (Whorled) – जब प्रत्येक पर्व संधि पर तीन या तीन से अधिक पर्ण लगे रहते है, तो इस प्रकार के पर्ण विन्यास को चक्रिक पर्ण विन्यास कहते हैं, उदाहरण –कनेर।

पर्ण के रूपान्तरण

किन्ही विशेष कार्य को करने के लिये सम्पूर्ण पर्ण या पर्ण का विशिष्ट भाग जैसे :– पर्णवृन्त, अनुपर्ण, पर्णफलक, पर्णशिखाग्र आदि विभिन्न रूपों में रूपान्तरित हो जाते है (चित्र 3.30)। पर्ण में निम्नांकित मुख्य रूपान्तरण पाये जाते हैं–

1. पर्णप्रतान (Leaf tendril) – जब पर्ण या पर्ण का कोई भाग पतली, हरी, धागेनुमा कुण्डलित संरचनाओं में रूपान्तरित हो जाता है तो इन्हे पर्णप्रतान कहते हैं ये दुर्बल तनों के आरोहण में सहायता करते हैं, उदाहरण :– मटर, स्माईलेक्स आदि।

2. पर्ण अंकुश (Leaf hooks) – कभी पर्ण में पर्णक अकुंश जैसी संरचनाओं में रूपान्तरित हो जाते है एवं छाल, खुरदरी सतह आदि पर अटक कर दुर्बल पौधों के आरोहण में सहायक होते हैं, उदाहरण :– बिगोनिया।

3. पर्णशूल (Leaf spines) – जब पर्ण या उसका कोई भाग कठोर नुकीला होकर शूल जैसी संरचना में परिवर्तित हो जाते है एवं पौधे में वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में होने वाले जल की

चित्र 3.30 : पर्ण के विभिन्न रूपान्तरण

हानि को कम करते है तथा पौधों की सुरक्षा का कार्य भी करते है तो ऐसी संरचनाओं को पर्णशूल कहते है, उदाहरण :– बारबेरी, नागफनी, सत्यानाशी आदि ।

4. शल्क पर्ण (Scale leaf) – कुछ पौधों में पर्ण पतले, शुष्क, झिल्ली सदृश्य हो जाते है। ये प्रायः भूरे या सफेद रंग के होते हैं ऐसे रूपान्तरित पर्ण को शल्कपर्ण कहते हैं। ये शल्क पर्ण या तो भोज्य सामग्री के संचय हेतु कार्य करते है या किसी अंग की सुरक्षा का कार्य करते है। भूमिगत कंद या प्रकंद में ये भूरे रंग के होते है और कक्षस्थ कलिका की सुरक्षा करते है। जबकि शल्ककंद भोजन संचय का कार्य करते है, उदाहरण :– प्याज।

5. पर्णाभवृन्त (Phyllode) – यह पर्णवृन्त का रूपान्तरण है। कुछ पौधों जैसे :– आस्ट्रेलियन अकेसिया में पिच्छाकार संयुक्त पर्ण होती है, जो तरूणावस्था में ही झड़ जाती है और पर्णवृन्त फैलकर चपटा पर्ण के समान हो जाता है एवं पर्ण के समान कार्य करता है, पर्णाभवृन्त कहलाता है।

6. घटपादप (Pitcher plant) – घटपादप या निपेन्थिस में कीटों को पकड़ने के लिये पर्णफलक घट में पर्णशिखाग्र घट के ढक्कन में तथा पर्णवृन्त प्रतानी वृन्त में और पर्णधार चौड़े, चपटे, फैले हुए हरे पत्ती नुमा संरचना में परिवर्तित हो जाती है।

7. ब्लेडरवर्ट (Bladder wort) – इनमें पर्णफलक कीट पकड़ने के लिये विशेष प्रकार की थैली में रूपान्तरित हो जाता है, उदाहरण :– *युट्रीकुलेरिया*।

पर्ण के कार्य

पर्ण पौधों का सक्रिय भाग है जो निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करता है–

1. कार्बनिक खाद्य का निर्माण – पौधों का भोजन शर्करा, प्रोटीन एवं कार्बनिक यौगिकों के रूप में होता है। पत्तियों में पर्णहरित पाया जाता है। सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पत्तियां, जड़ों द्वारा अवशोषित जल एवं लवण तथा वातावरण से अवशोषित कार्बनडाइ ऑक्साइड की उपस्थिती में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा उपरोक्त यौगिकों का निर्माण करती है। जो पौधे में वृद्धि तथा निर्माण में काम आता है।

2. पौधे के शरीर व वायुमण्डल के बीच गैसों का विनिमय – प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में पर्ण CO_2 को अन्दर ग्रहण करती है एवं O_2 को बाहर निकालती है। जबकि श्वसन की प्रकिया में O_2 को ग्रहण करती है एवं CO_2 को बाहर निकालती है तथा वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में जलवाष्प को बाहर निकालती है। इस प्रकार वाष्पोत्सर्जन की क्रिया एवं वातावरण के बीच गैसों का विनिमय पर्णद्वारा ही होता है।

3. वाष्पोत्सर्जन – मूलरोम भूमि से निरन्तर जल अवशोषित करते रहते है। यह अवशोषित जल पौधे की आवश्यकता से अधिक होता है और वाष्प के रूप में पत्तियों से रन्ध्रों द्वारा बाहर निकलता रहता है। यह प्रक्रिया वाष्पोत्सर्जन कहलाती है इस प्रक्रिया द्वारा विभिन्न कोशिकाओं का प्रसारण दबाव भी बना रहता है।

4. खाद्य संग्रह – विशेष परिस्थितियों में पत्तियां रूपान्तरित होकर खाद्य संग्रह का कार्य भी करती है। उदाहरण प्याज, शकरकंद, ग्वारपाठा, रामबांस, ब्रायोफिलम आदि

5. कायिक प्रवर्धन – विशेष परिस्थितियों में कुछ पौधों में पर्ण की फलक कोर पर उपस्थित कक्षस्थ कलिकाओं से जड़ें निकल आती है। जिनसे स्वंतत्र पौधे का प्रवर्धन हो सकता है। उदाहरण :– ब्रायोफिलम एवं बिगोनिया।

6. आरोहण अंग – दुर्बल पौधों में पर्ण के भाग रूपान्तरित होकर पर्णप्रतान एवं अंकुश बनाते है, जो आरोहण में सहायता करते है।

7. आत्म सुरक्षा – कुछ पौधों में पर्ण एवं इसके भाग शूल जैसी संरचनाओं में रूपान्तरित हो पौधों को सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करते है। उदाहरण :– बारबेरी, नागफनी।

पुष्प, पुष्प की सरंचना एवं पुष्पक्रम
(Flower, its Structure and Inflorescence)

पुष्प का परिचय

पुष्प वास्तव में प्ररोह तन्त्र की एक शाखा का रूपान्तरण है, जो जनन के लिये पर्णों के विशेष रूपान्तरण से बनता है। जननकाल से पूर्व प्ररोह की एक निश्चित समय तक कायिक वृद्धि होने के बाद प्ररोह की कायिक कलिकाओं का रूपान्तरण पुष्प कलिकाओं में हो जाता है। यह रूपान्तरण पादप में विशेष प्रकार के वृद्धि हारमोन या रसायनों के प्रभाव से होता है और ये हारमोन उस प्रकाश अवधि पर निर्भर करते हैं जो पादप को मिलती है। यही कारण है कि सभी पौधें एक साथ पुष्पन नहीं करते है। कुछ पादप वर्ष में एक ही बार पुष्पन करते हैं तथा कुछ वर्ष में दो बार, कुछ पादप वर्ष भर पुष्प बना सकते हैं, क्योंकि उनके लिए प्रकाश अवधि की आवश्यकता सदैव पूर्ण रहती है। पुष्प का स्थान प्ररोह में पर्ण के कक्ष में या प्ररोह की विशेष शाखाओं पर होता है । कलिका के स्थान पर पुष्प का बनना ही शाखा का रूपान्तरण सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमाण भी हैं जिससे पुष्प का एक शाखा का रूपान्तरण होना सिद्ध होता है।

1. कुछ पादपों में पुष्प का पुष्पासन अतिवृद्धि करके एक सामान्य शाखा के रूप में बढ़कर साधारण पर्णयुक्त शाखा बनाते हैं, जैसेः– गुलाब व कलेण्डुला।
2. पुष्प के बाह्य दल, दल, पुंकेसर, अण्डप आदि को पर्ण का रूपान्तर माना जाता है। कुछ पुष्पों में यह रूपान्तर अधूरा या इस प्रकार का होता है जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है उदाहरणतः – मूसेण्डा नामक पादप के पुष्प में पाँच बाह्यदल में से चार साधारण बाह्यदल होते हैं परन्तु पाँचवा पर्ण सदृश्य रंगीन बाह्यदल होता है।
3. कुछ पुष्पों में दल व पुंकेसर कई चक्रों में होते हैं। इन चक्रों में दल से पुंकेसर बनने (या इसके विपरीत) की सभी अवस्थाएं क्रमबद्ध श्रंखला में मिलती है। जैसे :– निम्फिया।
4. मेगनोलिया के पुष्प में पर्ण जैसे बाह्यदल व उनके भीतर की ओर कुछ रंगीन बाह्यदल तत्पश्चात दल व पुंकेसर बनने की सभी क्रमिक अवस्थायें मिलती हैं, जिनसे इनका पर्ण से रूपान्तरित होना सरलता से समझा जा सकता है।
5. शाखा में पर्व व पर्व संधियां दूर–दूर हैं, परन्तु पुष्प कलिका में पर्व छोटे होने से पर्व संधियां संघनित होकर पर्णों को चक्रों में पुष्पासन पर एकत्र कर देती हैं, परन्तु हुल–हुल पुष्प

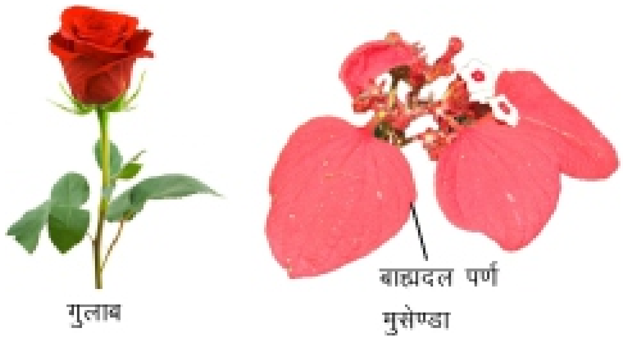

चित्र 3.31 : गुलाब में अतिवृद्धि एंव मुसेण्डा में पर्ण सदृश्य बाह्यदल

में दल बनने के बाद पुष्पासन पुनः लम्बा हो जाता है, अर्थात् पर्ण की लम्बाई बढ़ जाती है, एवं पुनः उस पर पुंकेसर के चक्र बनते हैं और अक्ष (पुष्पासन का प्रवर्धन) लम्बा होकर जायांग बनाता है। इन सबसे पुष्प का शाखा का रूपान्तर होना सिद्ध होता हैं (चित्र 3.31)।

पुष्प की संरचना

पुष्प की संरचना का अध्ययन करने के लिए एक ऐसे पुष्प को चुनते हैं जो आसानी से उपलब्ध हो सके तथा उसके सभी भाग स्पष्ट व आकार में बड़े हों जैसे गुड़हल, धतूरा, मटर आदि। पुष्प का स्वयं का एक अक्ष होता है जिसे पुष्पवृन्त, (Pedicel) कहते हैं। पुष्पवृन्त के आधार के पास एक छोटा सहपत्र (Bract) होता हैं। कुछ पुष्पों में सहपत्र के साथ सहपत्रिका (Bracteole) भी होती है। पुष्पवृन्त व सहपत्र सामान्यतः पुष्पावली अक्ष पर लगे रहते हैं। कुछ पुष्पों में पुष्पवृन्त स्पष्ट दिखाई नहीं देता और पुष्प अवृन्त कहलाता है, परन्तु प्रत्येक पुष्प के वृन्त घुण्डीनुमा पुष्पासन (Thalamus) के रूप में अवश्य होता है जिस पर पुष्प के पुष्पी पत्र संघनित होकर पुष्प बनाते हैं। पुष्पासन की आकृति में विविधता देखने को मिलती है और इससे पुष्प की संरचना व अन्य अंगों के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रभाव पड़ता है। पुष्पासन पर पुष्पी पत्र सर्पिल या चक्रीय व्यवस्था में होते हैं। सामान्य पुष्पों में ये चार प्रकार के होते हैं, जिनमें दो (अ) सहायक पुष्पी पत्र तथा दो (ब) अनिवार्य या आवश्यक पुष्पी पत्र के होते हैं (चित्र 3.32)।

(अ) सहायक अंग – पुष्प के जनन सम्बन्धी कार्य में सहायक होने के कारण इन्हें सहायक अंग कहा गया हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

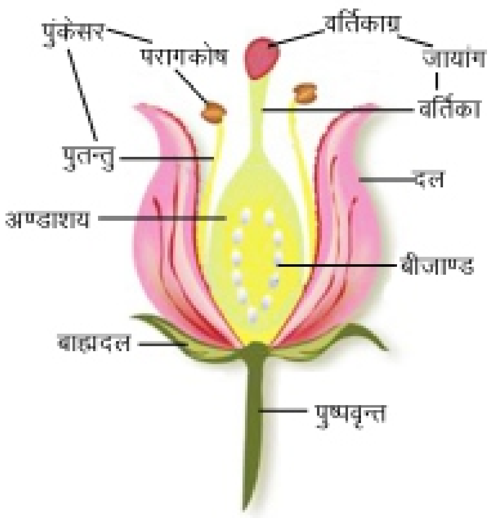

चित्र 3.32 : पुष्प के विभिन्न भाग अनुदैर्ध्य काट में

1. बाह्यदल पुंज (Calyx) – पुष्पासन पर बनने वाला सबसे पहला बाह्य चक्र है और हरे रंग की छोटी पर्णों से बनता है। कलिका अवस्था में सबसे बाहर सर्वप्रथम विकसित होने से अन्दर के अन्य अंगों की सुरक्षा करता है। इस चक्र के प्रत्येक पुष्पी पत्र को बाह्य दल (Sepal) तथा पूरे चक्र के समूह को बाह्यदल पुंज (Calyx) कहते हैं।

2. दलपुंज (Corolla) – बाह्यदल के भीतर की ओर स्थित पुष्पी पत्रों का दूसरा चक्र है जिसके प्रत्येक पत्र दल (Petals) होते हैं तथा एक पुष्प के सभी दल मिलकर दलपुंज बनाते हैं। ये सामान्यतः हरे रंग के अतिरिक्त अन्य किसी भी रंग के हो सकते हैं। दल के रंगों के कारण पुष्प पर कीट आकर्षित होकर परागण (Pollination) में सहायता करते हैं। प्रत्येक पुष्प में बाह्यदल व दल की संख्या निश्चित होती है और भिन्न–भिन्न कुलों के पुष्पों में यह भिन्न हो सकते है।

(ब) आवश्यक अंग : पुष्प में जननांग का होना आवश्यक होता है फिर भी ऐसे पुष्प देखे जा सकते हैं जिनमें केवल सहायक अंग ही होते हैं परन्तु आवश्यक अंग नहीं होते, जैसे आम के अलिंगी बन्ध्य पुष्प, केवल कीट आकर्षण हेतु बनते हैं। यदि दोनों आवश्यक अंग हो तो पुष्प द्विलिंगी होता है और यदि एक अंग हो तो एकलिंगी कहलाता है। सहायक अंगों के भीतर क्रमशः नर व मादा जननांग के चक्र लगे रहते हैं।

1. पुमंग (Androecium) – पुष्प का नर जननांग पुंकेसर होता है और इनके समूह को पुमंग कहते हैं। प्रत्येक पुंकेसर के दो भाग होते हैं, एक पुतन्तु (Filament) जो वृन्त के समान होता है, और दूसरा पुतन्तु के ऊपरी छोर पर घुण्डीनुमा बीजाणुधानी जैसा भाग परागकोश (Anther) होता है। केवल परागकोश में ही परागकण (Pollen grains) बनते हैं। ये परागकण वास्तव में लघुबीजाणु होते हैं जिनके अंकुरण से नर युग्मकोद्भिद व नर युग्मक बनते हैं। पुंकेसर की संख्या विभिन्न कुल के पुष्पों में भिन्न–भिन्न होती है। कुछ पुष्पों में यदि नर जननांग अनुपस्थित हो तो वह पुष्प स्त्रीकेसरी (Pistillate) कहलाता है। पुतन्तु का निचला सिरा पुष्पासन पर जुड़ा रहता है तथा उनका विन्यास एक या अधिक चक्रों में होता है।

2. जायांग (Gynoecium) – यह पुष्प का सबसे भीतरी तथा आवश्यक चक्र है। इसे मादा जननांग कहते हैं। प्रत्येक पुष्प के जायांग में एक या अधिक स्त्रीकेसर (Pistil) होती है । प्रत्येक स्त्रीकेसर एक या अधिक अण्डप (Carpel) की बनी होती है (चित्र 3.33)। स्त्रीकेसर में तीन भाग होते हैं –

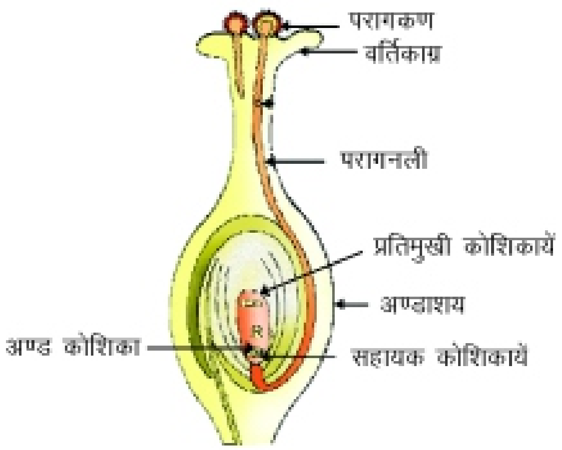

चित्र 3.33 : पुष्प के जायांग की संरचना एवं पुमंग द्वारा बीजाण्ड का भेदन

1. अण्डाशय (Ovary) – वह फूला हुआ भाग जो पुष्पासन पर आधारित होता है। इसमे बीजाण्ड (Ovule) बनते हैं। बीजाण्डों का अण्डाशय में विन्यास बीजाण्डन्यास कहलाता है।

2. वर्तिका (Style) – जायांग का लम्बा या छोटा पतला तन्तुनुमा भाग जो अण्डाशय के ऊपरी भाग का प्रवर्धन है।

3. वर्तिकाग्र (Stigma) – जायांग का टोपीनुमा या अन्य प्रकार का वह भाग जो वर्तिका का ऊपरी छोर बनाता है ।

प्रत्येक स्त्रीकेसर एक या अधिक अण्डप (Carpel) से बनता है। एक से अधिक संयुक्त अण्डपों वाली स्त्रीकेसर को संयुक्ताण्डपी (Syncarpous) कहते हैं। प्रत्येक अण्डप यदि अलग–अलग स्त्रीकेसर बनाये तो इसे वियुक्ताण्डपी (Apocarpous) कहते हैं। प्रत्येक अण्डप वास्तव में एक गुरूबीजाणुपर्ण का ही रूपान्तर है। जब नर, मादा, अलिंगी तथा द्विलिंगी पुष्प एक ही पादप पर बनते हैं तो पादप को सर्वलिंगी पादप (Polygamous) कहते हैं जैसे :– आम। जब नर व मादा पुष्प एक ही पादप पर बनते हैं तो पादप उभयलिंगाश्रयी (Monoecious) कहलाता है जैसे :–ककड़ी। जब नर व मादा पुष्प अलग–अलग पौधों पर बनते हैं तो पादप एकलिंगाश्रयी (Dioecious) कहलाते हैं। जैसे :–पपीता। जिन पुष्पों में स्त्रीकेसर अनुपस्थित हो वह पुंकेसरी (Staminate) पुष्प कहलाता है तथा जिनमें पुंकेसर अनुपस्थित हो वह स्त्रीकेसरी (Pistillate) कहलाते हैं।

पुष्प के विभिन्न अंगों के कार्य

1. बाह्यदल पुंज के कार्य – यह पुष्प के परिवर्धन के समय अन्य पुष्पांगों की रक्षा करता है और हरे होने के कारण प्रकाश संश्लेषण भी करता है। कुछ पुष्पों में बाह्यदल भी दल की भाँति रंगीन हो जाते हैं और कीट आकर्षण में सहयोग करते हैं, जैसे लार्कस्पर, मैगनोलिया आदि में। ऐसे अनेक पादप हैं जिनमें पुष्प के बाह्यदल फल बनने तक लगे रहते हैं , जैसे :– बैंगन, मिर्ची आदि में और फल की भी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार सूरजमुखी कुल के पुष्पों में बाह्यदल फल से लगे रहते हैं और रोमल या शल्क पत्रों जैसे होते हैं, जिससे फल के हवा में पैराशूट की भाँति उड़कर प्रकीर्णन (Dispersal) करने में सहायक होते हैं।

2. दलपुंज के कार्य – सामान्यतः दल रंगीन होते हैं जिनसे ये कीटों को आकर्षित करते हैं। कलिका अवस्था में बाह्यदल के साथ–साथ दल भी पुंकेसर व जायांग की संरक्षा करते हैं। कुछ पुष्पों के दल में तैलयुक्त ग्रन्थियाँ होने से ये सुगन्धित होते हैं जिससे गंध पंसद करने वाले कीट इन पर आकर्षित होते हैं। कीटों का आकर्षित होना, परागकणों को पुंकेसर से जायांग तक पहुंचाने हेतु आवश्यक है। अतः जिन पुष्पों में दल नहीं होते उनमें कीट आकर्षण के अन्य उपाय होते हैं। इसमें मकरंद (Nector) का पाया जाना प्रमुख है। सामान्यतः परागण तथा निषेचन (Fertilization) के बाद यह भाग सूखकर झड़ जाता है।

3. पुमंग के कार्य – ये पुष्प के पुंकेसरों के समूह से बना नर जननांग है। पुंकेसर के परागकोश से परागकणों का बाहर आना, पुष्प खिलने के समय होता है। परागकणों में भोज्य पदार्थ भरा होता है। अतः कुछ कीट उनको खाते हैं कुछ पौधों में परागकोश के ऊपर एक छोटी ग्रन्थि होती है जो गंध देती है।

अतः यह कीट आकर्षण का साधन है। कुछ पादपों में दल की भांति पुंकेसर भी रंगीन होते हैं और कीट आकर्षित करते हैं। परागण के बाद सामान्यतः पुंकेसर सूख जाते हैं।

4. जायांग के कार्य – यह पुष्प का मादा जननांग है। इसमें अण्डाशय का भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें बीजाण्ड बनते हैं जो निषेचन के बाद बीज बन जाते हैं। अण्डाशय रूपान्तरित होकर फल बनाता है। फलों की विभिन्न किस्में इस रूपान्तरण पर निर्भर रहती हैं। कुछ पुष्पों के पुष्पासन, अण्डाशय को चारों ओर से परिबद्ध कर लेते हैं और बीजाण्ड व बीजों की संरक्षा करते है। ऐसे पुष्पों के पुष्पासन स्वयं रसीले होकर फल का एक प्रमुख भाग बन जाते हैं (जैसे :– सेव, नाशपाती आदि)। कुछ पुष्पों में अण्डाशय के नीचे एक डिस्क होती है जो ग्रन्थिल होकर कीट आकर्षित करती है। स्त्रीकेसर के वर्तिका का कार्य वर्तिकाग्र को हवा में ऊपर उठाना है। इसकी लम्बाई पुष्प की संरचना तथा इसमें परागण के माध्यम पर निर्भर करती है। वर्तिकाग्र की संरचना विविध प्रकार की होती है। परागण की क्रिया में हवा, कीट, पानी या किसी जन्तु द्वारा परागकणों का

वर्तिकाग्र तक पहुंचना आवश्यक है। अतः वर्तिकाग्र परागकणों को ग्रहण करने योग्य होना आवश्यक है। वर्तिकाग्र की संरचना परागण के साधन के अनुरूप बन जाती है।

पुष्पक्रम (Inflorescence) – प्ररोह पर पुष्पों का विन्यास भी विभिन्न प्रकार का होता है, इसे पुष्पक्रम कहते हैं । यदि पर्ण के कक्ष में केवल एक पुष्प बने तो उसे एकल कक्षस्थ पुष्प कहते हैं । इसी प्रकार की शाखा की अग्रस्थ या अन्तस्थ कलिका के पुष्प में रूपान्तरण होने पर एकल अग्रस्थ पुष्प कहलाता है। एक ही शाखा पर एक से अधिक पुष्प बनने पर उसमें अक्ष की वृद्धि तथा शाखित होने की स्थिति के अनुसार पुष्पक्रम का नाम दिया जाता है। जिसके अनुसार पुष्पक्रम चार प्रकार के होते हैं –

1. सरल पुष्पक्रम (Simple inflorescence)
2. संयुक्त पुष्पक्रम (Compound inflorescence)
3. विशेष प्रकार के पुष्पक्रम (Special type of inflorescence)
4. मिश्रित पुष्पक्रम (Mixed type of inflorescence)

1. सरल पुष्पक्रम – यदि अक्ष पर एक से अधिक पुष्प किसी क्रम में विन्यासित हो तो पुष्पक्रम को सरल पुष्पक्रम कहते

चित्र 3.34 : सरल पुष्पक्रम

है । यह दो प्रकार का होता है (चित्र 3.34) –

(अ) असीमाक्षी (Racemose): इस प्रकार के पुष्पक्रम में अक्ष वृद्धि का समय तथा पुष्पों की संख्या अनिश्चित होती है अर्थात् अक्ष की वृद्धि असीमित होती है और अग्रभिसारी क्रम में पुष्प बनते हैं।

(ब) ससीमाक्षी (Cymose): इसमें मुख्य अक्ष की वृद्धि केवल एक पुष्प बनाकर समाप्त हो जाती है, और पार्श्व कलिकाओं से आगे नये पुष्पावली अक्ष की वृद्धि किसी निश्चित क्रम में होती हो तथा पुष्प बनते हों तथा क्रमशः प्रत्येक पार्श्व कलिका से बना नया पुष्पावली अक्ष अपने मातृअक्ष की भांति ही व्यवहार करता है, अर्थात एक पुष्प बनाकर वृद्धि समाप्त कर देता है और पुनः पार्श्व कलिका से नया पुष्पावली अक्ष तैयार करता है तो इस प्रकार के पुष्पक्रम को ससीमाक्षी पुष्पक्रम कहते है ।

2. संयुक्त पुष्पक्रम (Compound inflorescence) – उपर्युक्त वर्णित पुष्पक्रमों में असीमाक्ष पुष्पक्रम, छत्रक पुष्पक्रम आदि के अक्ष जब शाखित हो जाते हैं तथा हर शाखा उसी प्रकार का पुष्पक्रम बनाती है, तो संयुक्त पुष्पक्रम कहलाता है। जैसे संयुक्त छत्रक, धनिया, गाजर आदि। असीमाक्ष पुष्पक्रम के अक्ष के शाखित होने पर उसे पैनीकिल (Panicle) कहते हैं। इसी प्रकार अन्य पुष्पक्रमों में भी अक्ष के शाखित होने से संयुक्त पुष्पक्रम बनते हैं ।

3. विशेष प्रकार के पुष्पक्रम (Special type of inflorescence) – जब पुष्पक्रम इतना रूपान्तरित हो जाये कि पुष्पावली अक्ष की संरचना तथा पुष्पों की सापेक्ष स्थिति का आभास न हो सके तो उसे विशेष प्रकार का पुष्पक्रम कहते हैं। ये मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं–

(अ) सायथियम (Cyathium) – इसमें सहपत्र संयुक्त होकर प्यालेनुमा संरचना बनाते हैं तथा पुंकेसर नरपुष्पों के व एक स्त्रीकेसर मादा पुष्प के तुल्य होता है। उदाहरण :– यूफोर्बिया, लालपत्ता (Poinsettia)।

(ब) हाइपेन्थोडियम (Hypanthodium) – पुष्पासन मांसल हो जाता है और एक संकरे मुखयुक्त प्यालेनुमा आकृति बना लेता है जिसमें पुष्पों के सहपत्र संयुक्त होते हैं। पुष्प अवृन्त तथा एकलिंगी होते हैं। इसमें भीतर की ओर मुख से प्रवेश कर नर पुष्पों का पराग मादा पुष्पों तक पहुँचता हैं, जैसे :– गूलर, अंजीर, बरगद आदि।

(स) वर्टीसिलास्टर (Verticillaster): वास्तव में यह पुष्पक्रम ससीमाक्षी पुष्पक्रम का रूपान्तर है। तुलसी में हर पर्वसंधि पर दोनों ओर द्विशाखी ससीमाक्ष पुष्प क्रम बनते हैं, और बाद में यह एक शाखा में बदल जाते हैं। पुष्प अवृन्त होने से संघनित होकर पर्वसंधि के चारों ओर घेरा बना लेते हैं। शाखित होने का क्रम व मातृ अक्ष का अनुमान पुष्पों के खिलने के क्रम से जाना जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. आवृतबीजी पौधों के बीज ,फल या अण्डाशय में ढके रहते हैं।
2. आवृतबीजी पौधों में जड़, तना, पत्ती, पुष्प, फल एवं बीज मुख्य भाग होते हैं।

3. आवृतबीजी पौधें में पूर्णपुष्प में चार चक्र क्रमशः बाह्यदल, दल, पुमंग एवं जायांग पाये जाते हैं।

4. सरसों के पुष्पद्वीलिंगी होते है जबकि मक्का में नर एवं मादा पुष्प अलग–अलग बनते है।

5. जड़ के मुख्य भाग मूलगोप, मूलरोम, प्राथमिक एवं द्वितीयक जड़ होते हैं।

6. समान्यतः एक बीजपत्री, पौधों में समानान्तर एवं द्विबीजपत्री पौधों में जालिकावत् शिराविन्यास पाया जाता है।

7. निषेचन के पश्चात निषिताण्ड भ्रूण में, भ्रूणपोष केन्द्रक भ्रूणपोष में, बीजाण्ड बीज में और अण्डाशय फल में परिवर्तित होते हैं।

8. सरसों में सिलिकुआ एवं मक्का में केरियोप्सिस फल होता है।

9. आवृतबीजी पौधें प्रकृति में मरूद्भिद्, जलोद्भिद, समोद्भिद, लवणोमृदोद्भिद, तथा अधिपादपी अवस्थाओं में मिलते हैं।

10. आवृतबीजी पौधें मूलतः स्वपोषी होते है परन्तु आवश्यकतानुसार परजीवी तथा सहजीवी के रूप में भी जीवनयापन करते है।

11. जड़ पौधे का धनगुरूत्वानुवर्ती, धनजलानुवर्ती एवं ऋण प्रकाशानुवर्ती भाग होता है।

12. वह जड़ जिसका परिवर्धन भ्रूण मूलांकुर से होता है मूसला जड़ कहते हैं। वह जड़ जिसका विकास भ्रूण मूलांकुर से नहीं होकर तने के आधार भाग से निकली अप्रस्थानिक जड़ों के रूप में होता है रेशेदार जड़ कहते हैं।

13. मूल के उपरी सिरे से कुछ सेन्टीमीटर का क्षेत्र मूल का वर्धन प्रदेश होता है,जो मूल गोप से संरक्षित रहता है। इसमें मुख्यतया तीन क्षेत्र होते है– विभज्योत्तिकी,दीर्धीकरण एवं परिपक्वन क्षेत्र।

14. मूल तंत्र मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है– 1. मूसला मूलतंत्र 2. अप्रस्थानिक मूलतंत्र।

15. मूल के मुख्य कार्य 1. स्थिरीकरण 2. अवशोषण 3. संवहन 4. खाद्य संग्रह 5.आरोहरण है।

16. तना, शाखाए, पत्तियां,फूल एवं फल पौधे के वायव भाग होते है। सामूहिक रूप से प्ररोह कहलाते है।

17. तना, ऋण गुरूत्वानुवर्ती एवं धन प्रकाशानुवर्ती होता है। अतःभूमि से ऊपर की ओर वृद्वि करता है।

18. तने का वर्धन प्रदेश तने के शीर्ष भाग पर होता है। इसमें मुख्य तीन क्षेत्र –1. विभज्योतिकी क्षेत्र 2. दीर्घीकरण क्षेत्र 3. परिपक्वन क्षेत्र पाये जाते है।

19. तने की आकृति एवं सतह के आधार पर तना बेलनाकार, त्रिकोणीय, चतुष्कोणिय, पसलीदार, संधित , ठोस, नलीदार, चिकना या रोमील हो सकता है।

20. कुछ पौधों में मजबूत तना नहीं पाया जाता है, अतः इन्हें दुर्बल तने कहते है। ये दो प्रकार के होते है 1. विसर्पी 2. आरोही।

21. स्तम्भ के प्रमुख कार्य : 1. शाखाओं, पत्तियों, कलिकाओं को आधार प्रदान करना । 2. खाद्य पदार्थ का संवहन करना। 3. कायिक प्रवर्धन करना । 4. विशेष परिस्थतियों में खा़द्य संग्रहण करना तथा आरोहण के लिए प्रतान,कंटक आदि में रूपान्तरित हो जाता है। 5. वाष्पोत्सर्जन को कम करने तथा प्रकाश संलेषण के लिये पर्णाभ पर्ण, पर्णाभ पर्व में रूपान्तरित हो जाते हैं।

मूल तंत्र

- मूसला मूलतंत्र
  - खाद्य संग्रह
    1. तर्कुरूप मूली
    2. शंकुरूप गाजर
    3. कुम्भीरूप (शलजम)
    4. ग्रंथिल (गुलेबांस)
  - श्वसन मूल या न्यूमेटोफोर (राइजोफोरा)
- अप्रस्थानिक मूलतंत्र
  - खाद्य संग्रह
    1. कंदीय (शकरकंद)
    2. पुलकित (शतावरी)
    3. ग्रंथिल (अरारूट)
    4. मालाकार (बासीला)
    5. वलयाकार (आइपिकाक)
  - विशेष कार्य
    1. स्तम्भ मूल (बरगद)
    2. अवस्तम्भ मूल (मक्का)
    3. आरोहण (पान)
    4. चूषण मूल (अमरबेल)
    5. श्वसन मूल (आर्किड)
    6. आर्द्रता ग्राही मूल (आर्किड)
    7. प्रकाश संश्लेषी (सिंघाड़ा)
    8. पर्णमूल (पत्थरचट्टा)

तने के रूपान्तरण

भूमिगत रूपान्तरण

1. प्रकंद (अदरक)
2. कंद (आलू)
3. धनकंद (जमीकंद)
4. शल्ककंद (प्याज)

अधः वायव रूपान्तरण

1. उपरिभूस्तारि (दूब घास)
2. अन्तःभूस्तारि (पूदीन)
3. भूस्तारी (स्ट्राबेरी)
4. भूस्तारिका (जलकुम्भी)
5. पत्र प्रकलिका

वायव रूपान्तरण

1. स्तम्भ प्रतान (अंगूर)
2. स्तम्भ कंटक (दुरान्ता)
3. पर्णाभ स्तम्भ (नागफनी)
4. भूस्तारिका (जलकुम्भी)
5. पर्णाभ पर्व (अस्पारागुस)

शिरा विन्यास

- जालिकावत
  - पिच्छाकार
  - हस्ताकार
    - अपसारी
    - अभिसारी
- समानान्तर
  - पिच्छाकार
  - हस्ताकार
    - अपसारी
    - अभिसारी

22. पर्ण को मुख्य रूप से पर्णधार, पर्णवृंत एवं पर्ण फलक में बांटा जाता है।
23. पर्णधार की पार्श्व अतिवृद्धियां अनुपर्ण कहलाती है।
24. अनुपर्ण मुख्यतः चार प्रकार क्रमशः अलग्न, पर्णिल, शल्की एवं संलग्न होते है।
25. अविभाजित पर्णफलक वाली पर्णों को सरल पर्ण कहते है। जब पर्णफलक मध्य शिरा या पर्णवृंत तक कई भागों में विभाजित होता है, तो पर्ण संयुक्त पर्ण कहलाती है।
26. तने एवं शखाओं पर पर्णों की व्यवस्था को पर्णविन्यास कहते है। यह मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है। 1.एकान्तर 2.सम्मुख एवं 3. चक्रिक। सम्मुख पर्णविन्यास दो प्रकार का होता है (अ) क्रासित एवं (ब) अध्यारोपित।
27. पर्ण विशेष कार्यों हेतु रूपान्तरित हो जाते है। ये रूपान्तरण मुख्य रूप से 1. पर्ण प्रतान 2. पर्णअकुंश 3. पर्णशूल 4 शल्कपर्ण 5.पर्णवृन्त 6. घटपादप एवं ब्लेडरवर्ट है।
28. पर्ण के मुख्य कार्यः 1. प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बनिक खाद्य बनाना। 2. पौधों के शरीर एवं वायुमण्डल में गैसों का विनिमय 3. वाष्पोत्सर्जन करते है।
29. पुष्पक्रम चार प्रकार के होते है – सरल पुष्पक्रम, संयुक्त पुष्पक्रम, विशेष प्रकार के पुष्पक्रम व मिश्रित पुष्पक्रम।
30. पुष्प के मुख्य भाग निम्न है – 1. आवश्यक अंग – पुमंग व जायांग 2. सहायक अंग – बाह्यदल पुंज व दल पुंज।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. 'एन्जिओ' शब्द का अर्थ है–
   (अ) ढका हुआ (ब) छिपा हुआ
   (स) खुला हुआ (द) फैला हुआ
2. पूर्ण पुष्प में चक्रों की संख्या होती है–
   (अ) तीन (ब) दो
   (स) एक (द) चार
3. सरसों में पाई जाने वाली जड़ का प्रकार है–
   (अ) मूसला जड़ (ब) झकड़ा जड़
   (स) पर्ण जड़ (द) आभासी जड़
4. मक्का के फल का नाम है–
   (अ) सिलिकुआ (ब) केरियोप्सिस
   (स) बेरी (द) पोम
5. एक बीज पत्री का उदाहरण है–
   (अ) गेहूँ (ब) मटर
   (स) चना (द) सरसों

6. निम्न में से किस अंग के द्वारा मूल का परिवर्धन होता है–
(अ) प्रांकुर चोल से (ब) मूलांकुर से
(स) मूलांकुर चोल से (द) प्रांकुर से ।
7. निम्न में से कौनसा अंग जल अवशोषण के लिये मुख्य रूप से उत्तरदायी है–
(अ) मूलरोम (ब) मूलगोप
(स) मूलांकुर (द) मूल कोटरिका
8. मूल के प्रमुख कार्य कौन से है–
(अ) खाद्य संचय एवं प्रकाश संशलेषण
(ब) खाद्य संचय एवं स्थिरीकरण
(स) संवहन एवं अवशोषण
(द) संवहन एवं खाद्य संचय
9. मूली रूपान्तरण है–
(अ) तर्कुरूपी मूलतंत्र (ब) कुम्भीरूपी मूलतंत्र
(स) शंकुरूपी मूलतंत्र (द) कंदीय मूलतंत्र
10. शकरकंद की कंदीय मूल का विशेष कार्य है–
(अ) खाद्य संचय एवं कायिक प्रवर्धन
(ब) स्थिरीकरण एवं खाद्य संचय
(स) स्थिरीकरण एवं कायिक प्रवर्धन
(द) खाद्य निर्माण एवं संवहन
11. जो दुर्बल तने भूमि पर रेंगकर चलते है इन्हें कहते हैं–
(अ) वल्लरी (ब) आरोही
(स) विसर्पी (द) भूस्तारी
12. केसर का भूमिगत तना है–
(अ) कंद (ब) प्रंकद
(स) धनकंद (द) शल्ककंद
13. पर्णाभ पर्व का उदाहरण है–
(अ) अदरक (ब) आस्ट्रेलियन अकेशिया
(स) अंगूर (द) एस्पेरेगस
14. पर्णाभ स्तम्भ का उदाहरण है–
(अ) नागफनी (ब) रामबांस
(स) आक (द) रबर
15. द्विबीजपत्री की पर्णो में प्रायः शिराविन्यास का प्रकार होता है–
(अ) जालिकावत (ब)समानान्तर
(स) वक्रीय (द) सीधा
16. आक में पर्णविन्यास का प्रकार है–
(अ) सम्मुख अध्यारोपित (ब) सम्मुख क्रासित
(स) एकांन्तर (द)चक्रिक
17. अनुपर्ण पार्श्व अतिवृद्धि है–
(अ) पर्ण शिखाग्र की (ब) पर्णफलक की
(स) पर्णवृतं की (द) पर्णधार की
18. पर्ण का कार्य नहीं है–
(अ) प्रकाश संश्लेषण (ब) वाष्पोत्सर्जन
(स) गैस विनिमय (द) जल अवशोषण
19. पिच्छाकार संयुक्त पर्ण के प्रकार होते है–
(अ) चार (ब) तीन
(स) दो (द) पांच
20. पुष्प प्रेरित होता है–
(अ) प्रकाश से (ब) दाब से
(स) ताप से (द) वायु से
21. पुष्प के अनिवार्य अंग कौनसा है–
(अ) बाह्यदल पुंज (ब) दलपुंज
(स) पुष्पासन (द) पुमंग व जायांग
22. पुष्प का नर जननांग है–
अ) पुंकेसर (ब) स्त्रीकेसर
(स) बाह्यदल (द) दल
23. पुष्प का वह भाग कौनसा है जो सबसे अधिक कीटों को आकर्षित करता है–
अ) बाह्यदल पुंज (ब) दलपुंज
(स) पुमंग (द) जयांग

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अधिपादपी पौधे क्या होते है?
2. सहजीवी से क्या तात्पर्य है?
3. एन्जियोस्पर्मी शब्द का अर्थ बताईये।
4. फल किसका रूपान्तरण है?
5. मूल का प्रार्दुभाव किस भाग से होता है?
6. जड़ किसे कहते है?
7. अपस्थानिक जड़ किसे कहते है?
8. कायिक प्रवर्धन क्या होता है?
9. विभज्योतिकी क्षेत्र क्या होता है?
10. स्तम्भ रोम को कैसे पहिचानेगे?
11. तना किसे कहते है?
12. प्रतान क्या होता है?

13. विभिन्न पिच्छाकार संयुक्त पर्णों के नाम बताइये।
14. पुष्प क्या है?
15. पुष्प के प्रकार बताइये।
16. पुष्प के लैगिंक भागों के नाम बताइये।
17. पुष्प के कायिक भागों के नाम बताइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पूर्ण एवं अपूर्ण पुष्प में अन्तर कीजिये।
2. जलोद्‌भिद् एवं मरूद्‌भिद् में विभेद करो।
3. स्वपोषी एवं परजीवी पौधों को उदाहरण सहित समझाइये।
4. जड़ और तने में अन्तर बताइये।
5. झकड़ा एवं मूसला मूल में कैसे विभेद करेगें ?
6. जड़ द्वारा कायिक जनन किस प्रकार होता है?
7. उपरी भूस्तारी एवं भूस्तारी मे अंतर बताइये।
8. मूल रोम एवं स्तम्भ रोम में विभेद कीजिये।
9. प्रकंद एवं धनकंद में अन्तर कीजिये।
10. अंतस्थ एवं कक्षस्थ कलिका, तथा पत्र प्रकलिका में विभेद कीजिये।
11. तीक्ष्णवर्ध एवं कंटक में अन्तर बताइये।
12. पर्णाभ स्तम्भ एवं पर्णाभ पर्व में उदाहरण सहित अन्तर कीजिये।
13. सम्मुख अध्यारोपित एवं सम्मुख क्रासित पर्णविन्यास में किस प्रकार विभेद करेंगे।
14. घट पादप में पर्ण रूपान्तरण को समझाइये।
15. संयुक्त पर्ण एवं सरल पर्ण में विभेद कीजिये।
18. असीमाक्षी तथा ससीमाक्षी पुष्पक्रम से आप क्या समझते है?
19. पुष्प का नामांकित चित्र बनाईये।
20. पुष्प के कार्य लिखें।
21. दलपुंज के कार्य लिखें।
23. पुष्प के जायांग का नामांकित चित्र बनाईये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. आवृतबीजी पौधे का प्रारूपिक नामांकित चित्र बनाइये तथा विभिन्न भागों का वर्णन कीजिये।
2. आवृतबीजी पौधों की विभिन्न विशेषतायें बताइये तथा उपयुक्त उदाहरण दीजिये।
3. मक्का एवं सरसों के पुष्प में अन्तर बताइये।
4. विभिन्न प्रकार की अप्रस्थानिक जड़ों का उदाहरण सहित वर्णन करो।
5. मूसला मूल किसे कहते है? विभिन्न मूसला मूल रूपान्तरणों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
6. मूल के विभिन्न वृद्धि प्रदेशों का सचित्र वर्णन कीजिये।
7. तने के वायव रूपान्तरणों का सचित्र वर्णन कीजिये।
8. खाद्य संचय करने वाले तने के भूमिगत रूपान्तरणों का विस्तृत वर्णन कीजियें तथा उपयुक्त चित्र भी बनाइये।
9. तने के सामान्य लक्षण बताइये तथा इनके कार्यों की विवेचना कीजिये।
10. विभिन्न प्रकार के पर्ण रूपान्तारणों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
11. हस्ताकार संयुक्त पर्ण किसे कहते हैं। किन्ही चार प्रकार की हस्ताकार संयुक्त पर्णो का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
12. पर्ण के विभिन्न कार्यों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
13. पुष्प शाखा का रूपान्तरण है सिद्ध करें।
14. पुष्प के विभिन्न अंगों के कार्य लिखें।
15. पुष्पक्रम क्या है, यह कितने प्रकार का होता हैं?

उत्तरमालाः 1 (ब) 2 (द) 3 (अ) 4 (ब) 5 (अ) 6 (ब) 7 (अ) 8 (स) 9 (अ) 10 (अ) 11 (स) 12 (स) 13 (द) 14 (अ) 15 (अ) 16 (ब) 17 (द) 18 (द) 19 (ब) 20 (अ) 21 (द) 22 (अ) 23 (ब)